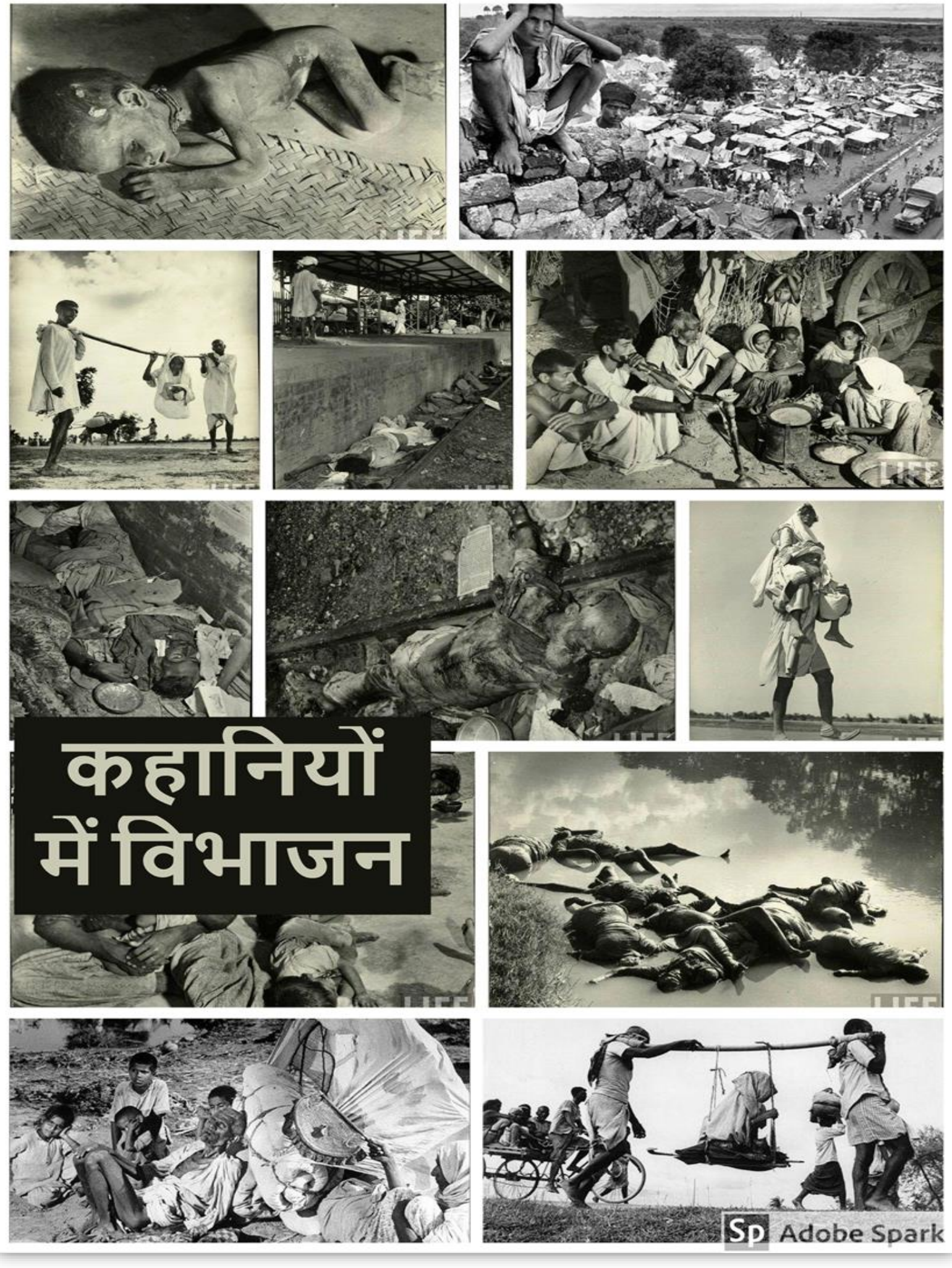
कहानियों
में विभाजन
Adobe Spark

अपनी बात

बहुत वर्षों से मेरी दिली ख्वाहिश थी कि कभी भरपूर खाली वक्त मिला तो मैं विभाजन की यादों से जुड़ी कहानियों का , जहां कहीं से भी संभव हो, संकलन करूंगा। नवोदय की बेहद व्यस्त दिनचर्या में ऐसा अवसर कभी न मिल सका। पर मुझे अलकेमिस्ट के लेखक पाओलो कोएल्हो की एक बात पर पूरा विश्वास बना रहा कि अगर आप किसी चीज को बड़ी शिद्दत से चाहते हैं तो सारी कायनात आपको उस चीज से मिलाने की साजिश करती है। एकदम ऐसा ही हुआ। 19 मार्च 2020 को प्रधानमंत्री मोदी जी ने वैश्विक आफत बन चुकी कोरोना महामारी से पूरे भारत को बचाने के लिए पहले तो सिर्फ एक दिन, पर बाद में 21 दिनों के लिए लॉकडाउन का ऐलान किया और पटना विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा घर पर ही रह कर रचनात्मक शैक्षणिक गतिविधियां सम्पन्न करने का निर्देश दिया तो मुझे अपनी रूचि के मुताबिक काम करने का अवसर मिल गया।

जिन कहानियों को यहाँ पर संकलित किया गया है, उसके सबसे बड़े हिस्से के लिए मैंने https://www.hindisamay.com/ का सहारा लिया। परंतु इस वेबसाइट पर उपलब्ध सामग्री में एक छोटी-सी त्रुटि यह रह गई है कि संबन्धित सभी लेखकों की तस्वीर मौजूद नहीं है। इसके लिए मैंने इंटरनेट का सहारा लिया। यहाँ पर शामिल कई लेखक पाकिस्तानी हैं, जिनकी तस्वीरें ढूँढने में काफी समय लगा।

इंटरनेट पर विभाजन से जुड़ी कहानियों की तलाश में कई ऐसी कहानियाँ भी सामने आई जिनका पहले कभी जिक्र तक नहीं सुना था। कुलवंत सिंह विर्क, खदीजा मस्तूर रूपा सिंह और वीणा करमचंदानी की लिखी कहानियाँ उनमें प्रमुख रूप से शामिल हैं।

यहाँ पर संकलित सबसे पहली कहानी के बारे में एक-दो बातें कहना चाहूँगा। यह किसी साहित्यकार द्वारा लिखी कहानी अथवा किसी की आपबीती न हो कर दो इतिहासकारों द्वारा घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन है।

सामान्य तौर पर इतिहास को बेहद नीरस और अरूचिकर माना जाता है। एक तो इस विषय की प्रकृति और दूसरी लोगों की इसके बारे में चली आ रही परम्परागत सोच कि यह सिर्फ नाम और तिथियों के भंवर जाल में ही फँसाती है, इस विषय के अध्यापन में कुछ नया करने की चाह पर काफी नकारात्मक असर डालती है। लेकिन गहन चिंतन रहस्योद्घाटन यह करता है कि इतिहास किसी अन्य सरस विषय की तरह हर तरह की रचनात्मता के अवसर प्रदान करता है। बस शुरुआत करने भर की देरी है।

पटना कॉलेज में पदस्थापना के बाद मुझे स्नातकोत्तर विभाग में भी पढ़ाने का अवसर मिला और वहाँ मुझे जो प्रकरण सौंपा गया, वह था-भारत विभाजन और इसकी विरासत(Partition & Its Legacy)। चूँकि इतिहास के प्रति मेरे शुरुआती रूचि अपने पूर्ववर्ती नेतरहाट विद्यालय में पनपी जहां के मेरे आदरणीय और अनुभवी शिक्षक हर छोटी-से छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों को कहानियाँ और नाटकों द्वारा समझाया करते थे। वहाँ पर ऐसे शिक्षक भी थे जो गणितीय संकल्पनाओं और सवालों तक को समझाने के लिए कहानियों का सहारा लेते थे। अपने इन अनुभवों को आधार बनाकर मैंने विभाजन से जुड़े तथ्यों और घटनाओं को कहानियों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया। इन प्रयासों की बड़ी अच्छी और सकारात्मक प्रतिक्रिया सामने आई जो मेरे लिए उत्साहवर्द्धक रही।

मसलन, सामान्य तौर पर विभाजन जैसे अध्याय को पढ़ाने के क्रम में शिक्षक और छात्र-दोनों की सामुदायिक भावना सामने उभर कर सामने आने लगती है। लोगों के पूर्वाग्रह और धारणाएँ सामने आने लगती हैं। किसी एक समुदाय को बेहतर अथवा बदतर बनाने की अवचेतन कोशिशें सामने आती हैं। इसकी सबसे बड़ी वजह मेरे मुताबिक यह है कि ज़्यादातर लोग विभाजन को तटस्थ नजरिए से देखने की कोशिश न के बराबर करते हैं। एक समुदाय की ज़्यादतियों को दूसरे समुदाय की ज़्यादतियों के आधार पर सही साबित करने की कोशिश होती है। ज़्यादतियों-चाहे वे किसी रूप में किसी के साथ हुई हों- उन्हें गलत ठहराने की ज़हमत कोई नहीं उठाना चाहता। ऐसे में एक शिक्षक की ईमानदार कोशिश ये होनी चाहिए कि वह हर तरह की ज़्यादतियों को सामने रख दे-सीमा के उस पार हुई ज़्यादतियों को भी और सीमा के इस पार हुई ज़्यादतियों को भी। फिर वह बच्चों को निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र छोड़ दे। पंजाबी, सिन्धी, बांग्ला, असमिया,हिन्दी,उर्दू,डोगरी और अन्य सरहदी भाषाओं की कहानियाँ इस संदर्भ में व्यापक्क सामग्री उपलब्ध करती हैं। इन कोशिशों का मनोवांछित फल मुझे इस रूप में मिला जब मेरे विद्यार्थियों ने कक्षा और कक्षा से बाहर मुझे ये कहा, "न हिन्दू बुरा है, न मुस्लिम बुरा है, न सिक्ख बुरा है। सब मौके की तलाश में रहते हैं। मौका मिलते ही, अच्छाई और बुराई का लबादा पहन लिया जाता है। बुराई भी हर किसी में है और अच्छाई भी हर किसी में है। बुरे से बुरे दौर में भी अच्छाई बची रह जाती है और लाख अच्छी कोशिशों के बाद भी बुराई कम-या-ज्यादा सामने आ ही जाती है। "

विभाजन की इन कहानियों में मानव मन की अजीब कश्मकश के दर्शन होंगे। बेहद मुश्किल परिस्थितियों में भी इंसान के अच्छे बने रहने की जद्दोजहद, बदले की भावना होने के बावजूद प्रेम और मुहब्बत का व्यवहार, परिस्थितियों के हर समय एक जैसा न बने रहने का विश्वास, नई सुबह आने की आशा-सब कुछ मिलता हैं इन कहानियों में। यह विभाजन के दिनों की हिंसा के प्रति हमारे नजरिए को पहले जैसा नहीं रहने देती हैं।

संकलन की शुरुआत में इंटरनेट पर उपलब्ध अलग-अलग वेबसाइट से कई लेख दिये गए हैं जो इस संकलन के लिहाज से बेहद प्रासंगिक है। ऐसे सभी लेखों के hyperlinks सक्रिय रूप से दे दिये गए है और जिज्ञासु पाठक कहानियों और लेखों के मूल स्रोत तक जा सकते हैं।

भारत का विभाजन कई बार हुआ। इसकी सरहदें कई बार पीछे और आगे गई। विभाजन की घटनाओं को शब्दाकार दिया गया। शब्दों ने कैसे स्मृतियों को जिंदा रखा। दस्तावेजों में कैसे इन शब्दों को सहेजकर रखा गया। विभाजन से जुड़ी स्मृतियों को सँजोकर रखने की जरूरत क्यों है और इसके लिए कितनी नामालूम कोशिशें जारी हैं, विभाजन कैसे हमारे सामूहिक अवचेतन को दशकों तक आलोड़ित करता रहा -सब का विवरण थोड़ा-बहुत समीचीन है।

पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि उनकी हर प्रतिक्रिया का तहेदिल से स्वागत है।

धन्यवाद!

अविनाश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर -इतिहास विभाग, पटना कॉलेज,
पटना विश्वविद्यालय, पटना-800005
संपर्क संख्या: 6202393206
ई-मेल पता: avinashisavailable@gmail.com

विभाजन की कहानियाँ

क्र.सं.	कहानी/लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ सं.
01	विभाजन की कहानियाँ		005
02	साहित्य समाज का दर्पण होता है, और उसमें अपने समय के दस्तावेजीकरण की ताकत होती है	नरेंद्र सैनी	008
03	नकली इतिहास भारत पर प्रेतात्मा बन कर छाया हुआ है	शिव विश्वनाथन	010
04	विभाजन को समर्पित संग्रहालय	बीबीसीहिन्दी	014
05	विभाजन और हिन्दी साहित्य		018
06	आज भी कुछ लोगों की आंखों में देश के बंटवारे की कहानियां देखी जा सकती हैं, ये वही क़िस्से हैं	कुन्दन	020
07	बूटा सिंह और जैनब	लैपियर एवं कॉलिन्स	023
08	गैर-मुल्की लड़की	अलताफ़ फ़ातिमा	030
09	बदला	अज्ञेय	036
10	हमारा देश	इब्ने इंशा	041
11	कितने पाकिस्तान	कमलेश्वर	042
12	पतझड़ की आवाज़	कुर्रतुल-ऐन-हैदर	058
13	अपने आँगन से दूर	खदीजा मस्तूर	070
14	घास	कुलवन्त सिंह विर्क	073
15	एक सिलसिले का अंत	वीना करमचंदाणी	078
16	मलबे का मालिक	मोहन राकेश	087
17	ठंडा गोश्त	सआदत हसन मंटो	197
18	तुलसी का बिरवा	सैयद वलीउल्लाह	103
19	माँ-बेटा	माँ-बेटा	105

विभाजन की कहानियाँ

सभ्यता ने जब-जब अपनी पुस्तक में विकास के अध्यायों को जोड़ा है, जंगों का जन्म हुआ है। यह कोई नई बात नहीं है। मुल्क हिन्दोस्तान इसी सिलसिले की एक कड़ी है। मुल्की गुलामी से निजात ने निज 'चीथड़ों' को जन्म दिया, वे साम्प्रदायिकता के लहू से रंग थे। यद्यपि इसे इस आँख से भी देखना चाहिए कि आपस की नाइत्तेफाकी केवल अंग्रेज की 'फूट डालो और शासन करो' राजनीति का परिणाम नहीं थी, हमारे अपने दिमाग भी दाग़दार थे, या हो चुके थे। हाँ, यह सच है कि साम्प्रदायकिता के उन्माद को जब-जब टटोलने की बात चलती है तो इसे सीधे अंग्रेजी राजनीति से जोड़कर अपना दामन बचाने की कोशिश की जाती है।

मगर पूरा—पूरा सच यह नहीं है। कुसूरवार कहीं हम भी रहे हैं। और यह जो अपनी पुरानी संस्कृति के खुलासे में मिला हुआ दिमाग रहा है...जिसमें वर्षों से यह बैठाया जाता रहा है...इतनी सारी नदियाँ, इतने सारे पहाड़...इतने सारे रंग, नस्ल और अलग-अलग देशों से आये 'चीथड़े'...यह जो, एक देश को 'सेकुलर' बनाने के पीछे हर बार जबरन 'पैबन्दों' की बैसाखियों का सहारा लिया गया—आप मानें न मानें इन्होंने भी जहनो-दिमाग के बँटवारे को जन्म दिया। दरअसल टुकड़े आर्यावर्त के नहीं हुए। टुकड़े हुए दिमाग के...और इनमें फूटी एक कोढ़नुमा संस्कृति...इनसे उपजा साम्प्रदायिकता का उन्माद।

आर्यावर्त कितने टुकड़ों में विभाजित हुआ। विभाजन की कितनी आँधियाँ चलीं इस देश में....कैसे-कैसे मोड़ आये। सात विभाजन...सात स्याह इतिहास...कभी यहां स्याह रंग की कौम रहती थी। आर्य आये-हजारों की संख्या में—पहले पंजाब पर क़ब्जा किया, फिर उत्तर प्रदेश पर। देश पहली बार गोरों और कालों में तक़सीम हुआ....। तो शुरू हो गई तक़सीम...चक्र चल पड़ा विभाजन का। उत्तर भारत में सफेदफाम आर्य और दक्षिण में स्याहफाम द्राविड़। सदियों तक सुकून से रहने के बाद आये आर्यों में फूट पड़ गई। इतिहास को संक्षेप में लिया जाये तो, विभाजन का दूसरा चरण आरम्भ था। फिर सिकंदर आया। जाते-जाते सेल्यूकस को अपनी सल्तनत का वायसराय बनाता गया। चाणक्य उस जमाने में गुप्त खानदान का प्रधानमन्त्री था। युद्ध हुआ। यूनानी सेना हार गई। यह देश के तीसरे विभाजन की घटना थी।

बाद का इतिहास भी काफी लंबा है। देश कई भागों में विभाजित हो चुका था। मुहम्मद बिन काशिम की अरब फौजें सिंध में सेंध डाल रही थीं। फिर पंजाब और सिंध पर क़ब्जा हुआ। तुर्क आये। पठान आये। मुग़ल आये। जहाँगीर ने फिरंगियों को व्यापार का रास्ता दिखा दिया.....औरंगजेब के मरते ही सल्तनत कमजोर पड़ने लगी। फिर पूरे मुल्क पर अंग्रेज़ों का क़ब्जा हो गया। यह मुल्क का चौथा विभाजन था। सन् 1935 में अंग्रेजों ने भारत से लंका और बर्मा को अलग दिया। कर यह विभाजन का

पाँचवाँ अध्याय था। छठा अध्याय राजनीति का वह स्याह पन्ना था जब देश 14 अगस्त, 1947 को दो भागों में विभाजित हो गया। पाकिस्तान और भारत। दो देश नहीं, दो दिलों की तक़सीम कर दी गई। 3 दिसम्बर, 1971 को भारत-पाक जंग आरम्भ हुई और एक अलग स्वतंत्र देश बांगलादेश बना....।

यह आर्यावर्त की सातवीं तक़सीम थी...विभाजन के सात दरवाजे....हर दरवाजे के भीतर एक आर्यावर्त कराह रहा है। कराहने का स्वर तेज़ है...पर शायद अब शब्द 'विभाजन' से भीतर कोई चीत्कार जन्म नहीं लेता। देश स्वाधीनता की सत्तावनवीं वर्षगांठ मना रहा है, पर इच्छाओं पर जैसे बर्फ की सिलें रख दी गई हों।

वास्तव में-जैसे अब यह देश नहीं रह गया हो-टुंड्रा प्रदेश बन गया हो। मानव होने की इच्छा, आकांक्षाओं, भावनाओं पर जैसे हिम गिर पड़ी हो। सत्तावन वर्ष— सत्तावन वर्ष में हमने उपलब्धियों को ज़ीने कम चढ़े, अपनों का ख़ून ज़्यादा बहाया। यदि साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ है, तो यह कोई अचम्भे की बात नहीं, शताब्दियों से विरासत में मिली विभाजन-संस्कृति से यदि साम्प्रदायिकता का जन्म न होता तब यह अचम्भे की बात होती।

आज़ाद कश्मीर, उत्तराखंड और हवालाओं-घोटालाओं के लम्बे सिलसिले। इनमें कौन लिप्त नहीं है। कहना चाहिए, जहाँ और जिस सतह पर जिसको अवसर मिलता है—वह भीग जाता है इस मलिन बारिश में—लेखन और पत्रिकारिता तक—हम जैसे छोटे-बड़े अनगिनत हिम खण्डों में घिर गये हैं—सर्द हो गये हैं, बेहिस, अमानव और नपुंसक। इस देश का सबसे बड़ा नायक धर्म है, और धर्म के नाम पर सबकुछ चलता रहता है।

टुंड्रा प्रदेश-छोटे बड़े हिमखण्डों में घिरे हुए हम। कहीं, धुंध में किसी स्लेज या रेन्डियर की आँखें तकती हैं—जो धुंध बना सके रास्ता और बाहर निकाल सके इस टुंड्रा प्रदेश से।

'इतिहास साक्षी है,
साक्षी है—तत्कालीन समय की,
पत्थरों पर लिखी गई अछूत कविताओं का एक दस्तावेज/
इनमें अमानवीय प्रसंग भी हैं/
कुछ निशानियाँ हैं—मलिन होती हुई.../
कुछ संदर्भ है—गहरे जख्मों के
और एक बर्फ की सिल्ली है.../जिसे उठाये घूम रहे हैं हम सब!''

टॉमस पीटर ने कहा—स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई में जितना हाथ देश पर निछावर करने वाले जाँबाज सिपाहियों का रहा है, उतना ही 'शब्दों' का। यह सम्भव ही नहीं है कि स्वतंत्रता संग्राम की बातें

हों और तत्कालीन समय की धधकती कविताओं/कहानियों/लेखों की याद न आये। ब्रिटिश सरकार को शब्द और शब्दों की ताक़त की पहचान थी। कितनी ही किताबें ज़ब्त कर ली गईं। कितने ही लहू-शब्दों पर पाबन्दी लगा दी गई। मगर शब्द चीत्कार करते रहे—

और लिखा जाता रहा स्वाधीनता का इतिहास, इंतेहाई ख़ामोशी से। प्रसिद्ध आलोचक, दार्शनिक एवं उपन्यासकार ज्यां पाल सार्त्र ने भी कहा था—

"शब्दों का महत्व इस बात में है कि वह दूसरों तक कैसे पहुँचता है। शब्दों में ताकत है—शब्द क्रांतिकारी विचारों को जन्म देते हैं। इतिहास गवाह है कि विश्व में हुई अनेक क्रांतियों का कारण यही शब्द बने हैं।"

शब्द फूल से मधुर, संगीतमय भी होते हैं और एक समय आता है, जब यही शब्द त्रिशूल, हथियार और संगीत से ज्यादा भयंकर हो उठते हैं और एक समय आता है, जब शब्द स्वयं क्रांति बन जाते हैं।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, और उसमें अपने समय के दस्तावेजीकरण की ताकत होती है

नरेंद्र सैनी, Updated: 8 अगस्त, 2018 3:15 PM

नई दिल्ली:

आजादी की सबसे बड़ी कीमत विभाजन के तौर पर चुकानी पड़ी. इस त्रासदी के लाखों लोग शिकार हुए और उन्हें बेघर होना पड़ा. कत्लेआम हुआ और कई जिंदगियां इसकी भेंट चढ़ गईं. आज भी जब आजादी का जश्न मनाया जाता है, तो यह त्रासदी जेहन में ताजा हो जाती है. हिंदी साहित्य में भी विभाजन का विषय हमेशा आता रहा है, और लेखकों ने अपने हिसाब से इस त्रासदी को लिखा है. आइए विभाजन से जुड़ी पिछले 70 साल के हिंदी साहित्य की सात कृतियों पर नजर डालते हैं:

झूठा सच, यशपाल: हिंदी के प्रसिद्ध लेखक यशपाल का उपन्यास है जो भारत विभाजन पर अपने महाकाव्यात्मक स्वरूप में इस त्रास का उदघाटन करता है. झूठा सच दो भागों में लिखा गया है - 'वतन और देश', तथा 'देश का भविष्य'. उपन्यास की नायिका तारा का संघर्ष और दूसरे चरित्रों के मार्फ़त सामाजिक परिवर्तन को देखा गया है. कहा जा सकता है कि विभाजन का जैसा औपन्यासिक दस्तावेजीकरण यशपाल ने इस उपन्यास में संभव किया है वह किसी भी भाषा के लिए गौरव की बात है.

तमस, भीष्म साहनी: तमस की रचना कैसे हुई? भीष्म साहनी ने इस प्रश्न पर कहा है कि आजाद भारत में हुए दंगों के कारण उन्हें अपने शहर रावलपिंडी के दंगे याद आए जिनकी आग गांवों तक फैल गई थी. 1986 - 87 में दूरदर्शन पर आए फिल्मांकन के कारण यह उपन्यास एकाएक चर्चित हो उठा था लेकिन उसकी असली ताकत दंगों और घृणा के घनघोर अन्धकार में भी मनुष्यता के छोटे छोटे सितारे खोजने में है. मजे की बात यह है कि इसकी कथा विभाजन से पहले की है लेकिन इसकी सफलता और सार्थकता इस बात में है कि यह विभाजन के मूल कारणों की पड़ताल करने में पाठक को विवेकवान बनाता है.

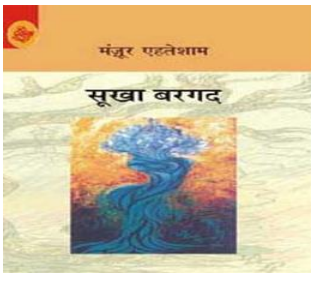

सूखा बरगद, मंजूर एहतेशाम: नब्बे के दशक में भोपाल के मंज़ूर एहतेशाम का लिखा उपन्यास आया 'सूखा बरगद' असल में स्वातंत्र्योत्तर भारत में विभाजन के परिणामस्वरूप आए सामुदायिक जीवन के बदलाव की कथा कहता है. इसके केंद्र में भारतीय मुस्लिम समाज है जिसके अंतर्विरोध और द्वंद्व उपन्यासकार ने बेहद मार्मिक ढंग से उद्घाटित किए हैं. एक मामूली आदमी जो विभाजन को अपने मन में कभी स्वीकार नहीं करता और धार्मिक कट्टरता से दूर उसके लिए पाकिस्तान एक अजनबी देश है लेकिन

तब भी उसे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के लोगों से जूझना पड़ रहा है. असल में भारतीय सामुदायिक जीवन की बरगद जैसी बहुलता के सूखते जाने का मर्सिया है -सूखा बरगद.

जिस लाहौर नइ वेख्या, असगर वजाहत: यह भारत विभाजन की एक घटना पर आधारित है. भारत से पाकिस्तान गए एक मुस्लिम परिवार को एक हिन्दू परिवार की कोठी मिली है और उसमें रहने वाली बुढ़िया भारत जाने को तैयार नहीं जबकि उसके घरवाले सब चले गए हैं. धीरे-धीरे नाटक में तनाव बढ़ता है और विभाजन से उपजी कट्टरता (या कट्टरता से हुए विभाजन) के कारण वहां बुढ़िया की स्थिति बेहद उलझन पैदा कर देती है. समाज में मौजूद कट्टर और धर्म का धंधा कर रहे लोग स्थितियों को बिगाड़ते हैं. तब भी असगर वजाहत उस निराशा और अंधकार में मनुष्यता और सद्भावना का उजास खोज लाते हैं.

सिक्का बदल गया, कृष्णा सोबती:कृष्णा सोबती अपने उपन्यासों के लिए चर्चित हैं लेकिन विभाजन पर लिखी उनकी कहानी 'सिक्का बदल गया' समस्या के एक पक्ष का प्रामाणिक और मार्मिक पाठ तैयार करती है. पाकिस्तान के एक मुस्लिम बहुल गांव में अकेली हिन्दू बची शाहनी की कथा एक खुद्दार और अपराजेय मनुष्य गाथा भी है. गांव की सेठानी को गांव के लोग गांव छोड़ने के लिए मजबूर कर रहे हैं. वह गांव छोड़कर कैंप जाती है लेकिन बिना कातर हुए. मुड़कर नहीं देखती. धार्मिक कट्टरता से उपजी घृणा के मध्य शाहनी का वीरता व्यक्तित्व सन्देश देता है कि मनुष्य को कोई कट्टरता झुका नहीं सकती.

शरणदाता, अज्ञेय: 'शरणदाता' अज्ञेय की कहानी है. कवि अज्ञेय की कहानी, यथार्थवादी बुनियाद पर लिखी इस कहानी में देविन्दरलाल जी को घर छोड़कर जाने से रफ़ीकुद्दीन साहब रोक लेते हैं. उन्माद और तनाव के घनघोर आतंक के बीच देविन्दरलाल उनके मकान में एक सूने कोने में शरण लिए हुए हैं. हिंसा से बचकर आए देविन्दरलाल जी को यहां भी जहर दिया जाता है. लेकिन वे मरते नहीं. क्यों? इस घृणा और हिंसा में भी उनके जीवन को बचाने वाला कोई है.

मलबे का मालिक, मोहन राकेश: मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' विभाजन की घटना का इधर वाला पाठ है. अमृतसर गनी मियां को घर छोड़ पाकिस्तान जाना पड़ा था. पीछे रह गए परिवार को मोहल्ले के लोगों ने 'पाकिस्तान' दे दिया. अब गनी मियां का घर मलबा बन चुका है और वे हॉकी मैच देखने के बहाने आए हैं. कृष्णा सोबती की शाहनी की आंख में कातरता और आंसू नहीं हैं तो यह कहानी गनी मियां के अमिट विश्वास की गाथा है. जिस मोहल्ले में उनका परिवार था वहां कैसे उनके बेटे को मारा जा सकता है. वे पहलवान से ही पूछते हैं और हत्यारा पहलवान खामोश है. यह पराजय की खामोशी है और गनी मियां के आंसू मनुष्यता का वह अवसाद जो हमें बेचैन करता है कि आखिर धर्म की कट्टरता क्यों आदमखोर बन जाती है?

नकली इतिहास भारत पर प्रेतात्मा बन कर छाया हुआ है

शिव विश्वनाथन on 15/08/2019 •

आज़ादी के 72 साल: स्मृति के रूप में जीवित विभाजन एक मौखिक संसार है, जो चुप्पियों में दबा हुआ है, नाउम्मीदी की भाषा में फंसा हुआ है. 72 सालों के बाद भी जिसके ज़ख्म भरने का नाम नहीं लेते.

विभाजन के समय का एक दृश्य. (फोटो: विकीमीडिया कॉमन्स)

मेरे एक मित्र ने एक बार मुझसे कहा था कि इतिहास एक पर्वत की चोटी की तरह है, जहां आकर हिंसा जम गई है और भाषा अवैयक्तिक नहीं रह गई है. लेकिन, उसका दावा था कि इतिहास त्वचा की तरह है, जो अपरिपक्व है और दर्द झेलना जिसका काम है.

यह एक जी गई हक़ीक़त है और एक ऐसी हक़ीक़त भी है, जिसे हम बार-बार जीते हैं. उसने इन विभिन्न रूपकों का प्रयोग विभाजन के बारे में बात करने के लिए किया था. उसका दावा था कि सत्ता के हस्तांतरण के तौर पर विभाजन इतिहास की किताबों की चीज़ है. जबकि स्मृति के रूप में जीवित विभाजन एक मौखिक संसार है, जो चुप्पियों में दबा हुआ है, नाउम्मीदी की भाषा में फंसा हुआ है. 72 सालों के बाद भी जिसके जख्म भरने का नाम नहीं लेते.

मुझे अपने मित्र द्वारा किए गए इस भेद की याद तब आई, जब मैंने राजनीतिक समाजशास्त्री चंद्रिका परमार से कहानियों की एक श्रृंखला सुनी. उन्होंने मुझे बताया कि कैसे उनकी दोस्त शैफाली वासुदेव उस बुजुर्ग व्यक्ति से मिलकर कौतूहल में पड़ गई थीं, जिन्होंने बॉर्डर फ़िल्म 50 बार देखी थी. यह फ़िल्म भले कमज़ोर थी, मगर लेकिन इसने एक तरह से अकेलापन झेल रहे एक व्यक्ति में तीव्र भाव जगाया था, उसे एक किरदार का साथ दिया. वे आख़िरकार अपने पोतों को वह फ़िल्म दिखाने ले गए, क्योंकि वे चाहते थे कि उनके पोते भी अनुभव को महसूस कर सकें जिसे वे हर दिन जीते हैं. उन घटनाओं का अनुभव कर सकें, जिन्हें वे न तो वे ख़ुद से अलग कर सकते हैं, न ही जिसे सुना सकते हैं. उन्हें लगा कि बॉर्डर फ़िल्म ने वर्षों की उनकी चुप्पी को अर्थ दिया, उनकी चुप्पी की संदर्भ सहित व्याख्या की है.

मुझे याद है एक बार हम एक कारोबारी का इंटरव्यू लेने गए थे, जिसने कार्यकुशल कारख़ानों का निर्माण किया था. जब उन्हें यह पता चला कि हम विभाजन के प्रसंग में रुचि रखते हैं तब प्रदूषण पर

बात करने की जगह उनकी दिलचस्पी स्मृति में जाग गई. उनके थके हुए गालों पर आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदें बहने लगीं, जिसे उन्होंने रुमाल निकाल कर पोंछा.

उन्होंने हमें बताया, 'मैं अमृतसर से आने वाली ट्रेन में था.' उन्होंने उसके बाद हुए क़त्लेआम का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया- हिंसा से बचने के लिए अपनी दादी के साथ वे किस तरह से ट्रेन के बाथरूम में जा छिपे थे. जब उन्होंने दरियागंज में मकान खोजने की अपनी कहानी सुनाई, तब वे ज़्यादा ठोस तरीक़े से अपनी बात कह रहे थे.

वहां उन्होंने मकानों को लाशों से पटा देखा. उनके द्वारा सुनाई गई कहानी आश्चर्यजनक ढंग से प्रामाणिक थी. उनसे लिए गए सातवें इंटरव्यू में कहीं जाकर यह पता चला कि विभाजन के समय उनकी उम्र महज चार साल की थी. उन्होंने अपनी दादी की स्मृति को अपनी स्मृति बना लिया था.
चंद्रिका ने ध्यान दिलाया कि दूसरे की स्मृति को अपनी स्मृति के तौर पर अपना लेना, यानी एक तरह की सेकंड हैंड या कृत्रिम स्मृति से विभाजन ग्रस्त है. उनका कहना है कि यह दूसरी और तीसरी पीढ़ी की समस्या थी, जो उस अनुभव से तो नहीं गुज़रे थे, मगर उस स्मृति को धारण करना जिनकी ज़िद थी. इनमें से कई लोग भाजपा के अंदर उन्मादी कट्टर समूह का हिस्सा बन गए.

स्मृति के तौर पर विभाजन आज भी समस्याएं खड़ी करता है. कुछ लोग उस दौर में बलात्कार की घटनाओं की बड़ी संख्या का ज़िक्र करते हैं. स्मृतियां कई रूपों में घिसटती रहती हैं और समाज पर किसी प्रेत के साये की तरह छाई रहती हैं. जबकि इतिहास कम दिक्कत देने वाला नज़र आता है.

ऐसा लगता है कि एक पूरी पीढ़ी सीधे तौर पर विस्थापन और हिंसा से पीड़ित होने की बजाय इनके द्वारा उन पर थोपी गई रोज़ाना के हज़ारों विकल्पों से ज़्यादा पीड़ित है. वे अपने विकल्पों के बारे में सवाल पूछते हैं, न कि नेताओं के फ़ैसलों के बारे में. उनके दिमाग़ में लॉर्ड माउंड बेटन की भूमिका किसी एक्स्ट्रा की तरह है. उनकी आत्मकथाएं गांव की घटनाओं और रोज़मर्रा की तकलीफ़ों से भरी है. यह स्मृति भारत में प्रेतबाधा की तरह छाई हुई है और यहां तक कि इसके चरित्र को ढंक लेती है.

मुझे, आईआईटी दिल्ली की इसी तरह की एक घटना की याद आ रही है, जहां एक प्रोफ़ेसर 2002 की घटनाओं को दुख के साथ याद कर रहे थे. उन्हें टोकते हुए एक छात्र ने कहा, 'कम से कम मुग़लों के 500 सालों के राज का बदला चुका लिया गया है.' विकृत स्मृतियां, चुप्पी और लिए गए निर्णयों की निराशा, यानी नकली इतिहास भारत पर प्रेतात्मा बन कर छाए हुए हैं और हमें यह याद दिलाते हैं कि विभाजन का वृत्तांत कभी भी एकरेखीय नहीं हो सकता है.

विभाजन की कहानियां आपके भीतर घिसटती रह सकती हैं और चुप्पियों से भी झांकती रह सकती हैं. मुझे याद है, जंक आर्टिस्ट नेक चंद उनके रॉक गार्डन में एक ख़ाली स्थान को लेकर लगभग रहस्यमय तरीक़े से ख़ामोश थे.

उन्होंने हमें उत्साह से बताया कि कैसे वे पाकिस्तान में हुए विश्व पंजाबी सम्मेलन में भाग लेने गए थे. नेक चंद अपने गांव को देखने गए. लेकिन इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि 1972 में उनका गांव भारतीय वायु सेना द्वारा ज़मींदोज़ कर दिया गया था. वर्षों के बाद, नेक चंद ने बड़ी मात्रा में कचरा (बेकार की चीज़ें, कूड़ा-कर्कट) इकट्ठा किया ताकि वे अपनी स्मृतियों में बसे गांव को फिर से जीवित कर सकें.

स्मृति के सामान का निर्माण करते हुए वे कचरे के कवित्व से अभिभूत होते रहे. उन्होंने ख़ुद को इतिहास के साथ बेईमानी करने वाले किसी चालबाज़ बहुरूपिए की तरह पाया जो अकड़ कर यहां-वहां भटक रहा है.

मुझे ऐसा लगता रहा है कि जिस तरह स्मृति भारत को परेशान करती है, उस तरह इतिहास नहीं करता. हमें लगता है कि इतिहास का निर्माण राष्ट्र राज्यों और एनसीईआरटी की इतिहास की किताबों से होता है. ऐसा करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि व्यवहार का निर्धारण समुदाय और स्मृतियों के द्वारा होता है.

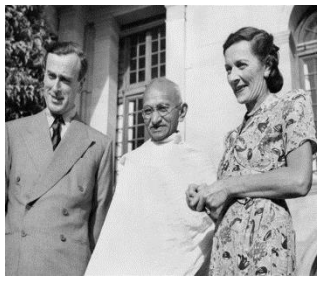

माउंटबेटन और महात्मा गांधी. (फोटो: विकीमीडिया कॉमन्स)

मैंने लोगों को विभाजन के लिए एक म्यूज़ियम बनाने और मरने वाले शहीदों के लिए स्मारक बनाने की बात करते हुए सुना है. मुझे लगता है कि जिस तरह की स्मृतियां हमारे बीच सांसें ले रही हैं, उनके लिए ऐसे संस्थान ज़रूरत से ज्यादा घटना केंद्रित हैं.

विभाजन और विभाजन की स्मृतियों का सामना सिर्फ़ एक नए तरह के नैतिक प्रयोग की तरह किया जा सकता है. यह प्रयोग मेल-मिलाप और कहानियां सुनाने को लेकर होगा, जिसमें विभाजन को झेलने वाले, कुछ वैसे लोग जो आज भी बचे हुए हैं, अपनी कहानियां सुनाएं.

लगभग ऐसा ही एक प्रयोग साउथ अफ्रीका ट्रूथ कमीशन (दक्षिण अफ्रीका सत्य आयोग) है, जो कहानियां सुनाने और सच कहने की रंगशाला (थियेटर) है. बचे हुए लोगों को गवाह के तौर पर लौटना होगा और भारत को एक समुदाय की तरह उन्हें सुनना होगा. मगर सत्ता में बैठी भाजपा के पास ऐसा करने के लायक कल्पनाशीलता और साहस का अभाव है.

2002 के दंगों में अपनी भूमिका के लिए माफ़ी मांगने से यह कतराती रहती है. इसमें विली ब्रांट जैसा कोई नेता नहीं है, जिसने अपने घुटनों पर गिरकर ऑश्वित्ज के पीड़ितों से माफ़ी मांगी थी. लेकिन ब्रांट से ज़्यादा हमें एक डेसमंड टूटू की ज़रूरत है, जो दर्द के अवचेतन में दाख़िल हो और पीड़ितों और पीड़ा देने वालों, दोनों को, अपनी कहानियों का बोझ उतारने में मदद करे.

विभाजन के दस्तावेज़ों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि 'राष्ट्र निर्माण' एक मूर्खतापूर्ण शब्द है. इसकी जगह हमारी कोशिश मेल-मिलाप, माफ़ी के रास्ते की खोज, मरम्मत और कहानी कहने की होनी चाहिए थी.

स्मृतियों को उपचार की ज़रूरत होती है. चूंकि विभाजन की स्मृतियां हम तक बार-बार लौटती हैं, इसलिए हमें समझना चाहिए सालगिरह घटनाओं का पुनर्निर्माण जानवरों की खाल से बने बुत की तरह नहीं करते, बल्कि जी गई हक़ीक़त के तौर पर करते हैं.

विभाजन पर एक ट्रूथ कमीशन, भले ही यह कितना भी मामूली क्यों न हो, उस भारतीय के उपचार का रास्ता बना सकता है, जो हत्यारी भीड़ को नागरिकता का काम मानता है. मैं ट्रुथ कमीशन, जो एक गांधीवादी आविष्कार है और जिससे भारत महरूम है, का हवाला इसलिए दे रहा हूं, ताकि मेल-मिलाप वह केंद्रीय शब्द बन जाए, जिसके इर्द-गिर्द हम हम अपने जख्मों को भर सकें.

(शिव विश्वनाथन, जिंदल ग्लोबल लॉ स्कूल में प्रोफेसर और सेंटर फॉर स्टडी ऑफ नॉलेज सिस्टम, ओ.पी जिंदल ग्लोबल यूनिवर्सिटी के डायरेक्टर हैं.)

Partition Museum: यहां रखी वस्तुओं के पीछे का दर्द जान आप भी हो जाएंगे भावुक

Publish Date: Fri, 16 Aug 2019 09:24 AM (IST)

स्वतंत्रता संग्राम में पहले ही बहुत कुर्बानियां दे चुके भारत ने आजादी पाई तो इस विभाजन में बहुत कुछ खो दिया। किसी ने बेटा खोया तो किसी ने सुहाग।

अमृतसर [नितिन धीमान]। 15 अगस्त 1947, जश्न का दिन। जश्न.. गुलामी की बेड़ियों को तोड़ देने का, जश्न.. आजाद फिजा में सांस लेने का और जश्न.. नई पहचान का। परंतु इसके साथ ही हुई त्रासदी.. मिला बंटवारे का दर्द..। अपनों को खो देने का दर्द.. अपनो से बिछुड़ जाने का दर्द..। वो दर्द जो लाखों लोगों ने सहा। भारत से एक टुकड़े को काटकर पाकिस्तान बना दिया गया।

स्वतंत्रता संग्राम में पहले ही बहुत कुर्बानियां दे चुके भारत ने आजादी पाई तो इस विभाजन में बहुत कुछ खो दिया। किसी ने बेटा खोया तो किसी ने सुहाग। किसी का परिवार ही बिछड़ गया। करीब 1.45 करोड़ लोग बंट गए, जबकि 20 लाख से ज्यादा लोग मौत हो गई। इस दौरान लोगों का सबकुछ पीछे छूट गया, लेकिन जो चीजें पाकिस्तान से उजड़कर भारत आए लोग अपने साथ लाए थे वह उनके लिए अनमोल हो गई।

इन्हीं यादों को 'बंटवारे के दर्द' की धरोहर को एक अनोखे संग्रहालय में सहेजा गया है। यहां रखी हर चीज के पीछे दर्द की दास्तां छिपी है। इस संग्रहालय को 'पार्टिशन म्यूजियम' का नाम दिया गया है। 2017 में आर्ट एंड कल्चरल हेरिटेज ट्रस्ट द्वारा अमृतसर में बनाया गया 'पार्टिशन म्यूजियम' विश्व में अपनी तरह का पहला व एकमात्र संग्रहालय है। अमृतसर में श्री हरिमंदिर साहिब के पास बनी हेरिटेज स्ट्रीट पर स्थित यह संग्रहालय पाकिस्तान सीमा से करीब 29 किलोमीटर दूर है। इसे अंग्रेजों द्वारा 1866 में बनाई गई टाउन हाल की इमारत में बनाया गया है।

'पार्टिशन म्यूजियम' की सीईओ मल्लिका आहलूवालिया कहती हैं कि यह लोगों का अपना संग्रहालय है। यहां रखी वस्तुएं विभाजन का दौर देखने व झेलने वाले लोगों ने स्वेच्छा से दान की हैं, ताकि आने वाली पीढ़ियां भी उस ऐतिहासिक समय के दर्द को समझ सकें। साथ ही कुछ लोगों ने ऑडियो या वीडियो के जरिए भी उस त्रासदी से जुड़ी अपनी यादें भी साझा की हैं। संग्रहालय की चेयरपर्सन कीश्वर देसाई तथा डिजाइनर नीरज सहाय द्वारा यहां कुछ रचनात्मक कृतियों के रूप में विभाजन की टीस को एक रूप दिया गया है।

वो मेरी गुड़ियों का संदूक

बंटवारे के बाद पाकिस्तान छोड़ भारत आई सुदर्शना कुमारी 1947 में आठ साल की थीं। पाकिस्तान के जिला शेखूपुर की रहने वाली सुदर्शना कुमारी अब दिल्ली में रहती हैं। उनका एक छोटा सा संदूक पार्टिशन म्यूजियम में रखा गया है। 81 वर्षीय सुदर्शना बताती हैं, बचपन में गुड़ियों से खेलना मुझे बहुत पसंद था। वही मेरी जान थीं, सहेलियां थीं। विभाजन का बिगुल बजा तो घर छोड़ना पड़ा। गुड्डियां भी वहीं रह गईं। हमें बहुत से लोगों के साथ एक खुले मैदान में इकट्ठा किया गया। रात को हम वहीं सोए। सुबह उठे तो देखा कुछ ही दूरी पर दंगों में एक कोठी जल गई थी।

बकौल सुदर्शना हम पांच-छह बजे उस जली हुई कोठी में गए और कुछ न कुछ उठा लाए। मुझे यह संदूक वहीं मिला था। मैंने लौटकर मां से कहा कि इसमें मैं अपनी गुड़ियों का सामान रखा करूंगी। फिर एक ट्रक में हमें वाघा के जरिए भारत छोड़ दिया गया। यहां आकर भी भटकना पड़ा, लेकिन मैंने अपना संदूक संभाले रखा। मेरी बड़ी बहन ने कुछ माह बाद मेरे लिए एक गुड़िया बनाई। इस संदूक में उस गुड़िया के लिए मैं तरह-तरह के कपड़े इकट्ठे करती थी।

मैं जब भी उस संदूक को देखती थी, बचपन में लौट जाती थी। शादी के बाद भी इसे ससुराल ले गई। तब इसमें अपने सर्टिफिकेट व मेकअप का सामान आदि रखने लगी। फिर हम आसाम चले गए और वहां से 30 साल बाद लौटे तो सबसे पहले अपने संदूक को मैंने पुन: संभाला। 79 साल की की उम्र में इसे संग्रहालय के लिए दिया तो तसल्ली हुई कि मेरी यादें आने वाली पीढ़ी से साझा होंगी।

संग्रहालय में पड़ी पॉकेट वॉच सुदर्शना कुमारी के ससुर की है। विभाजन के बाद उनके ससुर बिछड़ गए थे। परिवार के सदस्यों ने उन्हें हर ओर तलाशा, पर कहीं कोई खोज खबर नहीं मिली। इसी बीच रेडियो पर खबर आई कि एक शव मिला है। मृतक की पॉकेट से एक वॉच मिली है। जिस किसी का अपना है, वह आकर शिनाख्त करे। खबर सुनकर सुदर्शना कुमारी के पति वहां पहुंचे। शव की शिनाख्त की व अंतिम संस्कार भी। इसे भी संग्रहालय में रखा गया है।

बंटवारे की लकीर के पार 'रब्ब ने मिला दी जोड़ी'

यहां रखी फुलकारी जैकेट और ब्रीफकेस पाकिस्तान से भारत आए भगवान सिंह मैणी और प्रीतम कौर की निशानी हैं। विभाजन से पहले उनकी सगाई हुई थी। विवाह की तैयारियों के बीच विभाजन ने कहर ढा दिया। उनके परिवारों को उजड़ना पड़ा। प्रीतम कौर गोद में दो साल के भाई और हाथ में एक बैग में अपनी सबसे प्रिय फुलकारी जैकेट को लेकर अमृतसर जाने वाली ट्रेन में सवार हुई और यहां शरणार्थी शिविर में पहुंची। यह संयोग ही था कि उन्हें इसी शिविर में उसके होने वाले पति भगवान सिंह दिखाई दिए।

सरहद के पार डेढ़ करोड़ शरणार्थियों में यह मिलन चमत्कार से कम नहीं था। भगवान सिंह मैणी एक ब्रीफकेस लाए थे, जिसमें प्रॉपर्टी के दस्तावेज और स्कूल सर्टिफिकेट थे। 1948 में उनका विवाह हुआ। दोनों लुधियाना चले गए। भगवान सिंह का तीस वर्ष पूर्व, जबकि प्रीतम कौर का 2002 में देहांत हो गया। उनकी जैकेट और ब्रीफकेस आज भी उनकी कहानी बयां करते हैं।

एसपी रावल की गागर से पिया था शरणार्थियों ने पानी

एसपी रावल पाकिस्तान के मिंटगुमरी से संबंधित थे। रावल के पिता पाकिस्तान में अमीर जमींदार के रूप में जाने जाते थे। विभाजन के दौरान एसपी रावल अपने परिवार के साथ एक रेहड़े पर घरेलू सामान लादकर भारत आए। इसी सामान में एक पीतल की गागर भी थी। गागर इसलिए रखी गई थी, ताकि रास्ते में पानी की कमी न हो। जब वह कुरुक्षेत्र रिफ्यूजी कैंप में पहुंचे तो इसी गागर से सभी को पानी पिलाते थे। यह गागर उन्होंने स्वेच्छा से म्यूजियम को भेंट की है।

अमोल स्वानी का रेडियो व कंबल

अमोल स्वानी का परिवार विभाजन से पहले पेशावर में रहता था। पिता सूखे मेवों का कारोबार करते थे। दंगे भड़के तो अमोल स्वानी को उनके परिवार सहित उनके कुछ मुस्लिम कर्मचारियों ने ट्रक में मेवों से भरी बोरियों के पीछे छुपाकर सुरक्षित स्थान पर भेज दिया। परिवार की महिलाओं ने बुर्का पहनकर अपनी जान बचाई। अमोल स्वानी अपने साथ तब यह रेडियो तथा कंबल लाए थे। इसी रेडियो पर दंगों से जुड़ी हर खबर को वह सुनते और आगे बढ़ते रहे। यही रेडियो उनका मनोरंजन कर समय-समय पर उनके गमों पर मरहम का काम भी करता रहा। इस रेडियो तथा कंबल को भी यहां सहेजा गया है।

शादी में मिली चारपाई, अंत तक रही साथ

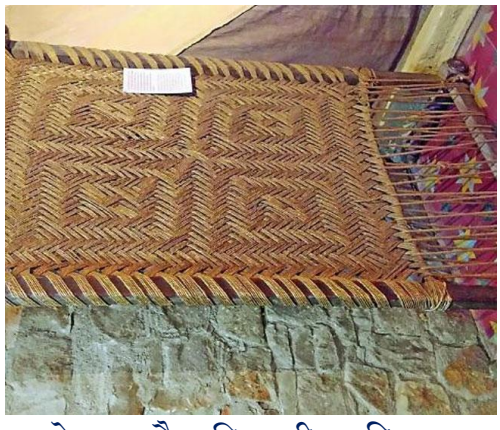

कमलनैन भाटिया का परिवार भावलपुर में रहता था। उन्होंने एक मुसलमान खुदाबख्श की मदद से अपने परिवार को सुरक्षित भारत भेज दिया और स्वयं 1951 में आए। परिवार को उन्होंने एक चारपाई दी थी, ताकि रात को कहीं रुक कर आराम कर लें। चारपाई इसलिए भी खास थी, क्योंकि यह उनकी शादी में पत्नी अपने साथ लाई थीं। कमलनैन के पोते अंकित भाटिया बताते हैं कि करीब 15 साल पहले कमलनैन की पत्नी का निधन हुआ और वो तब तक इसी चारपाई का इस्तेमाल करती थीं। दो साल पहले कमलनैन का भी देहांत हो गया है।

कीश्वर का कश्मीरी कुर्ता

यहां रखा एक कुर्ता शकुंतला कीश्वर का है। देश विभाजन के समय वह परिवार सहित पेशावर से कश्मीर घूमने आई हुई थीं। घटनाक्रम इतनी तेजी से बदला कि वे लोग पेशावर नहीं लौट पाए। यह कुर्ता उनके पास उस वक्त की धरोहर था, जिसे उनके परिवार की मधु पूर्णिमा कीश्वर ने स्मृति के रूप में संग्रहालय को सौंप दिया।

इसी साड़ी में तो हुए थे फेरे

अमृतसर की रहने वाली शकुंतला खोसला 1935 में विवाह बंधन में बंधकर लाहौर चली गईं। विभाजन के दौरान जब दंगे भड़के तो वह परिवार सहित अमृतसर लौटना चाहती थी, पर उनके पति लाहौर में रहकर ही व्यापार करना चाहते थे। कुछ महीनों तक वह अपने रिश्तेदारों के यहां छिपकर रहे। जब रिश्तेदारों को भी जान से मारने की धमकियां मिलीं तो शकुंतला व उनके पति को भारत आना पड़ा। शकुंतला खोसला अपने साथ वह साड़ी लेकर आईं जो उसने विवाह के दिन पहनी थी। उसे भी यहां रखा गया है।

विभाजन और हिन्दी साहित्य

इस 15 अगस्त को अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन से भारत की मुक्ति के 70 साल तो पूरे हो ही रहे हैं, लेकिन शायद इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह दिन भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन की सत्तरवीं वर्षगांठ का दिन भी है.

यह विभाजन एक ऐसी त्रासदी था जिसके घाव अभी तक पूरी तरह भर नहीं पाए हैं. जैसा कि मशहूर पाकिस्तानी इतिहासकर आयशा जलाल ने कहा है, विभाजन "बीसवीं सदी के दक्षिण एशिया की केन्द्रीय ऐतिहासिक घटना" था. एक ऐसा ऐतिहासिक क्षण था जिसने आने वाले अनेक दशकों को परिभाषित कर डाला. मानव इतिहास में कभी भी इतने विराट पैमाने पर आबादी की अदला-बदली नहीं हुई जितनी विभाजन के कारण बने पाकिस्तान और भारत के बीच हुई. इस त्रासदी के परिणामों के बारे में पक्के आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं लेकिन आम राय यही है कि कम से कम डेढ़ करोड़ लोग अपना घर-बार छोडने पर मजबूर हुए. इस दौरान हुई लूटपाट, बलात्कार और हिंसा में कम से कम पंद्रह लाख लोगों के मरने और अन्य लाखों लोगों के घायल होने का अनुमान है. न सिर्फ देश बंटा बल्कि लोगों के दिल भी बंट गए.

इस विभीषिका ने संवेदनशील साहित्यकारों को झकझोर कर रख दिया. इन दिनों की स्मृतियां आज भी ताज़ा हैं, इसका प्रमाण कुछ ही माह पहले हिन्दी की शीर्षस्थ कथाकार कृष्णा सोबती के उपन्यास "गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान" के रूप में सामने आया जिसमें उनके पाकिस्तान-स्थित पंजाब के गुजरात से विस्थापित होकर पहले दिल्ली में शरणार्थी के रूप में आने और फिर भारत-स्थित गुजरात के सिरोही राज्य में वहां के राजकुमार की गवर्नेस के रूप में नौकरी करने की कहानी है. अधिकांश उपन्यासों में लिखा रहता है कि इसके पात्र और वर्णित घटनाएं काल्पनिक हैं, लेकिन इसमें इसके विपरीत लिखा है कि इसके सभी पात्र और घटनाएं वास्तविक और ऐतिहासिक हैं. उपन्यासकार की टिप्पणी है कि "घरों को पागलखाना बना दिया सियासत ने" और विभाजन का निष्कर्ष एक पात्र सिकंदरलाल के शब्दों में यूं व्यक्त होता है: "यह तवारीख का काला सिपारा सियासत पर यूं गालिब हुआ कि जिन्ना ने दौड़ाए इस्लामी घोड़े और गांधी, जवाहर ने पोरसवाले हाथी."

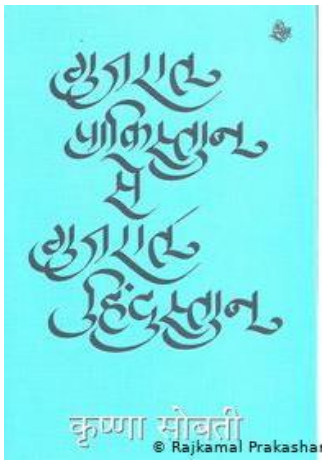

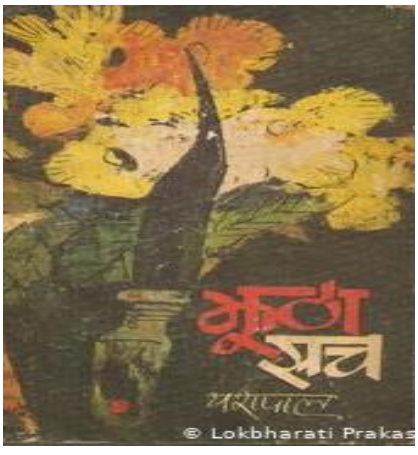

प्रख्यात उपन्यासकार यशपाल का दो खंडों में प्रकाशित उपन्यास "झूठा सच" विभाजन की त्रासदी पर हिन्दी में लिखा गया पहला ऐसा उपन्यास है जो इसे विराट ऐतिहासिक-राजनीतिक फलक पर प्रस्तुत करता है और विभाजन के बाद स्वाधीन भारत में शुरू होने वाली राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों में होने वाले क्षरण को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करता है. इसका पहला खंड 'वतन और देश'1958 में और दूसरा खंड 'देश का भविष्य'1960 में प्रकाशित हुआ था. पहले खंड की घटनाएं विभाजनपूर्व के लाहौर में घटित होती हैं और दूसरा खंड विभाजन के बाद के दिल्ली में केन्द्रित है. उपन्यास 1942 से लेकर 1957 तक के कालखंड का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है.

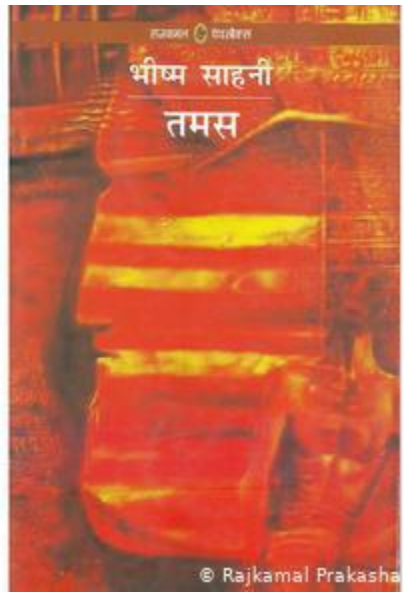

विभाजन को लेकर लिखा गया भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' भी यशपाल के 'झूठा सच' की तरह ही आधुनिक क्लासिक की श्रेणी में रखा जाता है. लेखक को इसे लिखने की प्रेरणा 1970 में भिवंडी, जलगांव और महाड़ में हुए सांप्रदायिक दंगों से मिली थी और वहां के दौरे ने उनकी रावलपिंडी की यादों को ताजा कर दिया था. इस उपन्यास का फ़लक 'झूठा सच' जैसा विराट तो नहीं है लेकिन सांप्रदायिक हिंसा को भड़काने की तकनीक और विभिन्न समुदायों के बीच असुरक्षा और दूसरे समुदायों के प्रति नफरत पैदा करने की प्रक्रियाओं का इसमें सूक्ष्म अध्ययन पेश किया गया है. राही मासूम राजा का 'आधा गांव' भी विभाजन से पहले की घटनाओं और इसके कारण सामाजिक ताने-बाने के छिन्न-भिन्न होने की प्रक्रिया को पाठकों के सामने लाता है लेकिन इसका लोकेल पूर्वी उत्तर प्रदेश है. बदीउज्जमा का 'छाको की वापसी' और कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' भी विभाजन पर हिन्दी में लिखे गए उल्लेखनीय उपन्यासों में गिने जाते हैं. इस विषय पर अनेक कहानियां भी लिखी गई हैं.

आश्चर्य की बात है कि हिन्दी कवियों ने विभाजन की ओर बहुत कम ध्यान दिया है. इस संबंध में केवल एक उल्लेखनीय कविता याद आती है जो 'अज्ञेय' ने 12 अक्तूबर 1947 से 12 नवंबर 1947 के बीच लिखी थी---पहली कविता इलाहाबाद में और दूसरी मुरादाबाद रेलवे स्टेशन पर. 'शरणार्थी' शीर्षक वाली यह लंबी कविता ग्यारह खंडों में है और उस समय की त्रासदी का बेहद मार्मिक चित्रण करती है.

आज भी कुछ लोगों की आंखों में देश के बंटवारे की कहानियां देखी जा सकती हैं, ये वही क़िस्से हैं

Kundan

2018 में खड़े होकर देखो तो 1947 बहुत धुंधला नज़र आएगा, वो भी तब जब आपने बंटवारे की फ़िल्में देखी होंगी, कहानियां पढ़ी होंगी, क़िस्से सुने होंगे या इतिहास का जानकारी होगी. लेकिन आज भी कुछ लोगों के ज़हन में 1947 की यादें आइने की तरह साफ़ है. ये वो लोग हैं जिन्होंने 1947 को अपनी आंखों से देखा, उसको जीया है.

पाकिस्तान का एक मशहूर मीडिया हाउस Dawn और भारत के Hindustan Times ने सांझे रूप से एक स्टोरी की है. इसमें उन लोगों के साक्षात्कार लिए गए हैं, जिन्होंने बंटवारे को अपनी आंखों से देखा है, उसमें अपना बहुत कुछ सहा है.

1. वसंद मल

उम्र बारह साल थी, तब उनका परिवार सिंध में रहता था. पिता जी ज़मींदार थे. 1942 बाढ़ की वजह से उनका गांव बर्बाद हो गया था. परिवार को भिक्कन के समीप चाक शहर में जा कर बसना पड़ बया था. 1946 तक माहौल बिगड़ने लगे थे. वसंद मल के चाचा और रिश्तेदार भारत के विभिन्न शहरों में जा कर बसने लगे थे.

1948 की हालत ये थी कि पूरे शहर में मात्र 60 हिन्दू परिवार बचे थे. वसंद मल के पिता ने पाकिस्तान को नहीं छोड़ा. वसंद मल बताते हैं कि भारत जाने का प्रति व्यक्ति ख़र्च सौ रुपये पड़ता था. जो तब के हिसाब से बहुत महंगा था. उनका ये भी कहना था कि उनकी पंचायत की स्थिति देश से उलट थी. उसने मिल कर लोगों की सुरक्षा की और दंगाइयों को मोहल्ले से दूर रखा.

हालात सुधरने के 6 साल बाद सरकार ने वसंद मल के परिवार को टूटा, खंडहर सा घर दिया. आज वसंद मल की आयु 80 बरस से ऊपर है और वो शांति से अपने परिवार के साथ एक जनरल स्टोर चला रहे हैं.

2. डॉक्टर आनंद राज वर्मा

साल 1937 में हैदराबाद में जन्म हुआ. आज़ादी के वक्त उम्र दस वर्ष थी. जहां पूरे देश में आग लगी हुई थी, आनंद राज वर्मा के आस-पास सांप्रदायिक सौहार्द बना हुआ था. उनका परिवार पिछले 200 साल से इस शहर में रह रहा था.

हैदराबाद भारत का हिस्सा बनना नहीं चाहता था, परिस्थितियां कुछ ऐसी बनीं कि आनंद राज के परिवार को या राज्य को छोड़ना पड़ा. आनंद राज परिवार और 25 रिश्तेदारों के साथ विजयवाड़ा चले गए.

वर्तमान में डॉक्टर वर्मा एक जानी-मानी हस्ती हैं. उन्होंने Zoology के रास्ते अपने करियर की शुरुआत की और कॉलज के डीन तक बने. सात सालों तक टेलीविज़न गेम शो होस्ट किया.

3. Major Geoffrey Douglas Langlands

1917 में इंग्लैंड के Yorkshire में Douglas Langland का जन्म हुआ. 1944 में उनका तबादला भारत के बैंगलोर में हुआ. उन्हें नए अधिकारियों को ट्रेनिंग देने का काम सौंपा गया. उसके बाद उन्हें देहरादून भेजा गया. जहां उन्हे भविष्य के भारत-पाकिस्तान के सैनिकों को प्रशिक्षित करना था.

ये तय हुआ था कि देश को 1948 में आज़ाद होना था. लेकिन बिगड़ती परिस्थितियों को क़ाबू करने के लिए 1947 में ही आज़ाद कर दिया गया. Geoffrey Douglas को हड़बड़ी में रावलपिंडी भेजा गया. लेकिन जब वो वहां पहुंचे. तो देखा कि रावलपिंडी वीरान हो चुका है. सारे लोग भारत जा चुके हैं.

विभाजन से पहले वो Geoffrey भारत आते-जाते रहते थे. कई बार उन्हें यात्रियों की ट्रेन को सुरक्षित पहुंचाने का ज़िम्मा सौंपा गिया था.

जब सभी अंग्रेज़ अधिकारियों को पाकिस्तान छोड़ने के लिए कहा जा चुका था. तब उन्होंने अपनी मर्ज़ी से पाकिस्तान में रहने का फ़ैसला लिया. उनके बेहतरीन काम को देखते हुए पाकिस्तान सरकार ने उन्हें रहने की मंज़ूरी भी दे दी. आज़ादी के बाद Geoffrey शिक्षण कार्य से जुड़ गए.

आज भी वो लाहौर में रहते हैं. जवानी के दिनों में दोस्त सवाल पूछा करते थे कि तुम शादी कब करोगे. तब उनका जवाब होता था. 'जब युद्ध समाप्त हो जाएगा तब'. आज उनकी उम्र 100 के करीब है और उन्होंने शादी नहीं की.

4. अर्घवानी बेग़म

ये कहानी भी अन्य कहानियों की तरह ही है. अर्घवानी बेग़म का जन्म 1922 में उत्तर प्रदेश के गवर्नर परिवार में हुआ था. बचपना सभी ऐश-ओ-आराम के साथ गुज़रा. 1943 में दिल्ली में शादी हुई. 1947 में दो बच्चे थे. तीसरा बच्चा पेट में था. हालात के मारे ससुराल वाले जान बचाने पाकिस्तान जाने के लिए लाल क़िले के कैंप में शरण लिए हुए थे. बेग़म का तीसरा बच्चा कैंप में हुआ.

लाहौर के लिए जब निज़ामुद्दीन रेलवे स्टेशन से निकले. तब गोद में दो दिन का बच्चा भी था और जान भी बचानी थी. लोग भूखे प्यासे थे. जब कहीं ट्रेन रुकती थी. लोग पानी के लिए ट्रेन से उतरते थे

लेकिन उनमें से बहुत वापस चढ़ नहीं पाते थे. बेग़म को याद है कि एक ट्रेन विपरीत दिशा से गुज़र रही थी. लोगों ने एक दूसरे पर हमला कर दिया. उन्होंने अपनी आंखों से क़त्ल-ए-आम देखा.

आज अर्घवानी बेग़म लौहर के मॉडल टाउन के एक छोटे से घर में रहती हैं. सरकार ने थोड़ी से ज़मीन दे दी. खेती करने के लिए. एक बार भारत अपने घर को देखने आई थी. पूरे सफ़र के दौरान उनके आंसू नहीं रुक रहे थे.

5. मिल्खा सिंह

इनकी कहानी आपने फ़िल्म 'भाग मिल्खा भाग' में देखी होगी. कुल मिला कर उनके जीवन की असली कहानी कुछ वैसी ही है, जैसी फ़िल्म में दिखती है. मिल्खा सिंह का जन्म पश्चिमी पंजाब में हुआ था, जो बंटवारे के समय पाकिस्तान के हिस्से में चला गया.

पिता पेशे से लोहार थे और खेती भी करते थे. जब बंटवारे की तलवार चली, तब मिल्खा सिंह की उम्र 15 साल थी. परिवार के अधिकांश लोग दंगे में मारे गए. जैसे-तैसे मिल्खा दिल्ली पहुंचे. परिवार के साथ-साथ जीने की सभी उम्मीदों की भी हत्या हो चुकी थी. तीन सप्ताह तक दिल्ली के स्टेशन के पास मौजूद रिफ्युजी कैंप में मिल्खा सिंह रहे, वहां उन्हें मालूम हुआ कि उनकी बड़ी बहन भी ज़िंदा है.

ज़िंदगी चलाने के लिए कई छोटे-मोटे काम किए, पढ़ाई करने की कोशिश भी की. आर्मी की बहाली में भी पहुंचे लेकिन तीन बार फ़ेल होने के बाद चौथी बार में सलेक्ट हो गए. वहां अपने भीतर तेज़ दौड़ने की प्रतिभा को पहचाना और आगे की कहानी आपको पता है, उन्होंने क्या किया और कैसे Flying Sikh कहलाए.

भारत-पाकिस्तान के बीच आज भले ही अच्छे रिश्ते न हों लेकिन जिन्होंने अविभाजित भारत की मिट्टी में जन्म लिया था, उनके लिए आज भी ये दोनों जगहें उनका घर हैं.

बूटा सिंह और जैनब

डोमिनिक लैपियर एवं लैरी कॉलिन्स

भारत के विभाजन के फलस्वरूप होने वाली दुखद घटनाओं का वृतांत कभी पूरा न होता, अगर उनके साथ वासना की तृप्ति के लिए पाशविकता का भरपूर परिचय न दिया गया होता, जैसा कि इतिहास के आरम्भ से हर संघर्ष में होता आया था। इस अभागे प्रांत-पंजाब- पर निर्दयता की जितनी घटनाओं का अभिशाप था, उन सबको बड़े पैमाने पर बलात्कार की घटनाओं ने और भी घिनौना बना दिया था। शरणार्थियों के समूहों से, ठसाठस भरी हुई ट्रेनों से, सुनसान गाँवों से हजारों लड़कियाँ और औरतें उड़ा ली गयीं। आधुनिक युग में इससे बड़े पैमाने पर औरतों का अपहरण और कहीं नहीं हुआ था। अगर औरत हिन्दू या सिख होती थी, तो उसे उड़ा लाने के बाद एक धार्मिक समारोह में जबर्दस्ती धर्म बदलकर इस लायक बना दिया जाता था कि वह, जिस मुसलमान ने उसे उठाया था उसके घर या हरम में रह सके।

संतोष नन्दलाल पाकिस्तान के मियाँवाली शहर के एक हिन्दू वकील की 16 साल की बेटी थी। उसका अपहरण कर के उसे गाँव के मुखिया के घर ले जाया गया। उसने बाद में बताया, "पहले तो मुझे कई थप्पड़ मारे गये, फिर किसी व्यक्ति ने अचानक गो-माँस का एक टुकड़ा लाकर जबर्दस्ती मुझे खिलाया। बहुत ही बुरा स्वाद था उसका। मैंने अपने जीवन में कभी गोश्त नहीं खाया था सब लोग हँसने लगे। मैं रो पड़ी। इतने में एक मुल्ला ने आकर कुरान की कुछ आयतें पढ़ीं और मुझे उनको दोहराने पर विवश किया।"

इसके बाद उसका एक नया नाम रख दिया गया। संतोष अल्ला-रक्खी बन गयी। जिस लड़की की 'अल्लाह ने रक्षा की थी' उसे गाँव के मर्दों के बीच नीलामी पर चढ़ा दिया गया। नीलामी एक लकड़हारे के नाम छूटी। इस कष्टप्रद अनुभव के पच्चीस साल बाद वह बड़ी कृतज्ञता से स्मरण करती थी कि 'वह बुरा आदमी नहीं था, उसने मुझे फिर कभी गोश्त खाने पर विवश नहीं किया'।

सिख गुरुओं ने अपने शिष्यों को विशेष तौर पर मना किया था कि वे मुसलमान स्त्रियों के साथ संभोग न करें, शायद इस लिए कि पंजाब में जो कुछ हुआ, वह न हो। इसका परिणाम यह हुआ कि सिखों में आम चर्चा हो गयी कि मुसलमान औरतों के साथ संभोग करने में विशेष आनन्द आता होगा। पंजाब की घटनाओं से प्रभावित होकर सिख लोग अपने की सीख तो भूल गये और उनकी कल्पना बेरोक-टोक

उड़ान भरने लगी। पागलों की तरह हर जगह मुसलमानों पर टूट पड़े और पंजाब के उनके हिस्से में उड़ाकर लायी गयी मुसलमान औरतों का व्यापार बड़ी तेजी से फलने-फूलने लगा।

बूटा सिंह 55 साल का एक वृद्ध सिख था। वह बर्मा में माउंटबेटन की फौज में लड़ चुका था। सितम्बर के महीने में एक दिन तीसरे पहर वह अपने खेत में काम कर रहा था कि अचानक उसे पीछे से एक सहमी स्त्री के चीखने की आवाज सुनायी दी। उसने मुड़कर देखा कि उसी जैसा एक सिख नौजवान लड़की का पीछा कर रहा है। वह लड़की आकर बूटा सिंह के ऊपर गिर पड़ी और गिड़-गिड़ाकर कहने लगी, "मुझे बचा लो, मुझे बचा लो!"

बूटा सिंह उस लड़की और उसका पीछा करनेवाले सिख के बीच में आ गया। पलक झपकते वह समझ गया कि मामला क्या है? लड़की मुसलमान थी और उस सिख ने उसे शरणार्थियों के एक गुजरते हुए जत्थे से उड़ाया था। सारे सूबे में फैली हुई मुसीबत के इस तरह अचानक उसके खेते में आ जाने के कारण से बूटा सिंह को अपने अकेलेपन की समस्या को हल करने का मुँहमाँगा अवसर मिल गया। वह बहुत शर्मीला आदमी था और उसने कभी शादी नहीं की थी, अव्वल तो इसलिए कि उसके घरवालों के पास बहू लाने के लिए पैसे ही नहीं थे और दूसरे वह स्वयं भी बहुत दब्बू स्वभाव का था।

"कितना?" उसने लड़की का पीछा करने वाले सिख से पूछा।

"पन्द्रह सौ रूपये," उसका उत्तर था।

बूटा सिंह ने मोल-तोल भी नहीं किया। अपनी झोपड़ी में जाकर वह चुपचाप मैले-कुचैले नोटों की गड्डी ले आया। उन नोटों से उसने जो लड़की खरीदी, वह 17 साल की थी, उम्र में उससे 38 साल छोटी। उसका नाम था -जैनब। वह राजस्थान के एक मामूली काश्तकार की बेटी थी। अकेले जीवन बसर करनेवाले उस वृद्ध सिख को तो जैसे एक खिलौना मिल गया, जिसे कभी वह अपनी बेटी की तरह प्यार करता, कभी अपनी प्रेमिका की तरह। उसके आने के बाद वह उसमें ऐसे खो गया कि उसकी जिन्दगी का सारा ढर्रा ही तितर-बितर हो गया। वह प्यार जो अब तक वह किसी पर नहीं लुटा पाया था, अचानक जैनब के लिए एक धारा बनकर फूट पड़ा। हर दूसरे-तीसरे दिन बूटा सिंह पास के बाजार जाता और उसके लिए कोई-न-कोई चीज ले कर आता- कभी साड़ी, कीमती साबुन की बट्टी, कभी जरी-कारचोब के काम की स्लीपरें।

भागने से पहले जैनब को बुरी तरह मारा-पीटा गया था, उसके साथ बलात्कार किया गया था, इसलिए अकेले जिन्दगी बिताने वाले उस वृद्ध सिख ने जब उस पर इतना स्नेह और इतना प्यार लुटाना शुरू किया तो पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ, लेकिन बाद में वह पूरी तरह उसके प्रेम में डूब गयी। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इसके बदले में उसने भी उसका उपकार मानते हुए उसके प्रति स्नेह दिखाया

और शीघ्र ही बूटा सिंह की सारी जिन्दगी उसी के चारों ओर घूमने लगी। दिन में वह उसके साथ खेत में जाती, सुबह सूरज उगने से पहले और शाम को सूर्य डूबे वह उसकी भैंसों को दुहती और रात को उसके साथ सोती। उनकी झोपड़ी से 16 मील दूर ग्रैण्ड ट्रंक रोड पर शरणार्थियों के लुटे हुए जत्थे अब भी आते-जाते रहते थे। बूटा सिंह की बारह एकड़ भूमि ऐसी लगती थी जैसे घृणा से भरे हुए बर्फ के एक पहाड़ में से एक छोटा-सा टुकड़ा अलग हो गया हो।

शरद ऋतु में एक दिन सिख परम्परा के मुताबिक मुँह-अँधेरे शहनाइयों की विचित्र आवाज बूटा सिंह की झोपड़ी की ओर बढ़ती हुई सुनायी दी। बूटा सिंह सजी-धजी शादी की घोड़ी पर बैठा हुआ, गानेवालों और जलती-बुझती मशालें लिए हुए पड़ोसियों के बीच घिरा हुआ उस मुस्लिम लड़की को अपनी दुल्हन बनाकर लाने जा रहा था, जिसे उसने मैले-कुचैले नोटों की गड्डी देकर खरीदा था।

कुछ सप्ताह बाद जिस युग में उसके जैसे दूसरे पंजाबियों को इतने भयानक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था, उन्हीं दिनों बूटा सिंह को ईश्वर ने एक अंतिम पुरस्कार दिया। उसकी पत्नी ने बताया कि उसके बच्चा होनेवाला है। जिस औलाद की बूटा सिंह को सदा से लालसा थी वह अब उसे मिलनेवाली थी। ऐसा लग रहा था कि ईश्वर उस वृद्ध सिख और उस मुसलमान लड़की पर अपने सारे वरदानों की बौछार करने पर तुला हुआ था, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। इस विचित्र जोड़े के लिए बेरहम दुखों का एक लम्बा दौर शुरू होनेवाला था, जो आगे चलकर लाखों लोगों के लिए विभाजन की लानतों का प्रतीक बन गया।

गाँधी जी की भविष्यवाणी के अनुसार ही विभाजन के भयानक अभिशाप पूरे उप-महाद्वीप के लिए बरसों तक मुसीबत बने रहे। फिर से समृद्धि आने के बाद भी अदला-बदली की विभीषिका की कड़वी यादें मिट नहीं सकीं और सीमा के दोनों ओर एक-दूसरे के प्रति गहरी घृणा बनी रही।

एक अभागा सिख किसान, बूटा सिंह लाखों पंजाबियों के लिए उनके झगड़े के भयानक दुष्परिणामों का और साथ ही इस उम्मीद का भी प्रतीक बन गया कि शायद अंत में मनुष्य की सुखी रहने की प्रवृत्ति उस घृणा पर छा जाये जिसने उन्हें एक-दूसरे से अलग कर रखा था।

विवाह के ग्यारह माह बाद बूटा सिंह के यहाँ एक बेटी पैदा हुई। बूटा सिंह ने उसका नाम रखा-तनवीर। कुछ साल बाद बूटा सिंह के कुछ भतीजों ने इस बात पर चिढ़कर कि अब बूटा सिंह की जायदाद उन्हें नहीं मिलेगी, भगदड़ के दिनों में उड़ाकर लायी गयी औरतों की खोज करने वाले अधिकारियों को जैनब के बारे में बता दिया। जैनब जबर्दस्ती बूटा सिंह से छीन ली गयी और उसे एक शरणार्थी कैम्प में रख दिया गया; पाकिस्तान में उसके परिवार का पता लगाने का प्रयत्न किया जाने लगा।

बौखलाकर बूटा सिंह नई दिल्ली पहुँचा और वहाँ अपने केश कटवा दिये और धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान बन गया। अब उसका नया नाम जमील अहमद रख दिया गया। इसके बाद बूटा सिंह पाकिस्तान के उच्चायुक्त के पास फरियाद लेकर गया।

लेकिन उसकी कौन सुनता था! दोनों देशों ने उड़ाकर लायी गयी लड़कियों और औरतों की अदला-बदली के बारे में बेहद कड़े कानून बना दिए थे कि इस तरह की औरतों की शादी हो गयी हो या न हुई हो, उन्हें उनके परिवार वालों को वापस कर दिया जायेगा, जिनसे उन्हें जबर्दस्ती छीनकर लाया गया था।

छः महीने तक बूटा सिंह प्रतिदिन अपनी पत्नी से मिलने कैम्प में जाता रहा। वह उसके पास चुपचाप बैठा सुख से जीवन बिताने के अपने सपने टूट जाने पर घण्टों रोता रहा। अंत में उसे ज्ञात हुआ कि जैनब के परिवार का पता चल गया है। दोनों रो-रोकर एक-दूसरे के गले मिले और जैनब ने वादा किया, " मैं तुझे कभी नहीं भूलूँगी और जितनी जल्दी हो सकेगा तुमसे और अपनी बेटी से मिलने वापस आ जाऊँगी। "

बूटा सिंह ने मुसलमान होने के नाते पाकिस्तान जाकर बसने की अर्जी दी। अर्जी नामंजूर कर दी गयी। उसने वीजा के लिए अर्जी दी, वह भी नामंजूर हो गयी। अंत में, अपनी बेटी को साथ लेकर, जिसका नाम अब सुलताना रख दिया गया था, वह चोरी से सरहद -पार चला गया। बेटी को लाहौर में छोड़कर वह उस गाँव में पहुँचा, जहाँ जैनब का परिवार जाकर बस गया था। वहाँ पहुँचकर उसे बहुत बड़ा धक्का लगा। हिन्दुस्तान से वापस आने के कुछ ही घंटे बाद उसकी शादी उसके रिश्ते के एक भाई के साथ कर दी गयी थी। बेचारा रो-रोकर यही कहता रहा, " मेरी पत्नी मुझे वापस दे दो। "

जैनब के भाइयों और रिश्तेदारों ने उसे बुरी तरह मार-पीटकर पुलिस के हवाले कर दिया कि वह चोरी से सरहद पार करके आया है।

बूटा सिंह पर मुकदमा चला। उसने कहा कि वह मुसलमान है, इसलिए उसकी पत्नी उसे वापस कर दी जाए। उसने कहा कि यदि मुझे अपनी पत्नी से मिलकर यह पूछने का अवसर दे दिया जाए कि वह मेरे और अपनी बेटी के साथ हिन्दुस्तान वापस चलने को तैयार है तो मुझे तसल्ली हो जाएगी।

जज को तरस आ गया। उसने बूटा सिंह की बात स्वीकार कर ली। सप्ताह भर बाद जब दोनों का आमना-सामना हुआ। उस समय न्यायालय का कक्ष खचाखच भरा हुआ था। समाचार-पत्रों में यह किस्सा प्रकाशित हो जाने के कारण इस मामले का पता सबको चल गया था। गुस्से से बिफरे हुए रिश्तेदारों के घेरे में सहमी हुई जैनब न्यायालय में लायी गयी। जज ने बूटा सिंह की ओर संकेत करके पूछा, " इस आदमी को जानती हो?"

"हाँ", औरत ने काँपते हुए उत्तर दिया, "यह बूटा सिंह है, मेरा पहला पति।" इसके बाद जैनब ने उस बूढ़े सिख के पास खड़ी हुई अपनी बेटी को पहचाना।

"क्या तुम इनके साथ हिन्दुस्तान वापस जाना चाहती हो?" जज ने पूछा। बूटा सिंह ने फरियाद-भरी आँखों से उस नवयौवना की ओर देखा, जिसने उसकी जिन्दगी को इतना सुखी बना दिया था। कुछ और आँखें भी जैनब को घूर रही थीं; उसकी बिरादरी के मर्द नजरों-ही-नजरों में उसे चेतावनी दे रहे थे कि अगर उसने अपने रक्त के सम्बन्ध को ठुकराया तो उसके लिए अच्छा नहीं होगा। न्यायालय में बहुत पीड़ादायक शांति छायी हुई थी। बड़ी बेबसी और उम्मीदस ए बूटा सिंह जैनब के होठों को देख रहा था और उस उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसके बारे में उसे पूरा विश्वास था कि उसके हक़ में ही होगा। न्यायालय में एक क्षण तक सन्नाटा छाया रहा। ऐसा लगता था कि यह क्षण कभी समाप्त ही नहीं होगा।

जैनब ने सिर हिलाकर दबी जबान से कहा, " नहीं"।

बूटा सिंह के मुँह से एक आह निकल गई। वह लड़खड़ाकर अपने पीछे के कटहरे में जा टिका। जब वह सँभला तो अपनी बेटी का हाथ पकड़कर कक्ष के पार जाने लगा।

"जैनब, मैं.....मैं...तुमसे तुम्हारी बेटी छीनना नहीं चाहता", उसने कहा, " मैं उसे तुम्हारे पास ही छोड़ जाता हूँ।" उसने अपनी जेब से कुछ नोट निकाले और उन्हें अपनी पत्नी को देते हुए बस इतना कहा, "मेरे जीवन में अब रह ही क्या गया है?"

न्यायाधीश ने जैनब से पूछा, "क्या तुम अपनी बेटी को अपने पास रखने को तैयार हो?"

न्यायालय में एक बार फिर दर्दनाक शांति छा गयी। अपनी-अपनी जगहों पर बैठे हुए जैनब के रिश्तेदार जोर-जोर से अपने सिर हिला रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि सिखों का रक्त उनकी बिरादरी को नापाक करे।

जैनब ने बड़ी मायूस नजरों से अपनी बेटी को देखा। उसे अपने साथ रखने का अर्थ होगा कि उसे जहन्नुम में ढकेल देना। एक जोर की सिसकी से उसका सारा शरीर काँप उठा। उसने लँबी साँस लेकर कहा,"नहीं।"

बूटा सिंह की आँखों में आँसू तपक रहे थे। वह बड़ी देर तक खड़ा अपनी रोती हुई पत्नी को देखता रहा। शायद वह उसके धुँधलाये हुए चेहरे को हमेशा के लिए अपनी स्मृति में बसा लेना चाहता था। फिर उसने बड़े पयार से अपनी बेटी का हाथ पकड़ा और पीछे मुड़कर देखे बिना न्यायालय के कक्ष से चला गया।

बूटा सिंह का हृदय टूट चुका था। वह रात-भर दाता गंगबख्श की मजार पर बैठा रोता रहा और दुआएँ माँगता रहा। उसकी बेटी पास ही एक खम्भे से लगकर सोती रही। जब सुबह हुई तो वह अपनी

बेटी को बाजर ले गया। वहाँ उसने उन्हीं रूपयों से, जो उसने अपनी पत्नी को देने की कोशिश की थी, अपनी बेटी के लिए एक नया जोड़ा और जरी की स्लीपरें खरीदीं। इसके बाद बूढ़ा अपनी बेटी का हाथ पकड़े पास ही शाहदरा स्टेशन गया। वह प्लेटफार्म पर खड़ा गाड़ी आने की प्रतीक्षा कर रहा था और रो-रोकर अपनी बेटी को समझा रहा था कि अब वह अपनी माँ से फिर कभी नहीं मिल सकेगी।

दूर से इंजन की सीटी की चीखें सुनायी दी। बूटा सिंह ने बड़े प्यार से अपनी बेटी का हाथ उठाकर चूमा और चलकर प्लेटफार्म की कगार पर आ गया। जब इंजन धड़धड़ाता हुआ स्टेशन में घुसा तो बज्जी ने महसूस किया कि उसके पिता की बाँहें उसके चारो ओर कसती जा रही है। फिर अचानक उसे लगा कि वह आगे छलाँग लगा रहा है। बूटा सिंह तेजी से आते हुए इंजन के सामने कूद पड़ा। बज्जी को एक बार इंजन की सीटी की दहाड़ सुनाई दी, लेकिन इस बार उसके साथ स्वयं उसकी चीखें भी मिली हुई थीं। इसके बाद वह इंजन के नीचे अन्धेरे में खो गयी।

बूटा सिंह तो तुरंत ही मर गया, लेकिन उसकी बेटी बच गयी। उसे एक खरोंच तक नहीं आयी। बूढ़े सेख की चिथड़े-चिथड़े लाश के साथ पुलिस को खून से सना हुआ एक पत्र मिला, जो उसने अपनी बेवफा पत्नी से विदाई लेते हुए लिखा था।

उसमें उसने लिखा था, " मेरी प्यारी, जैनब, तुमने भीड़ की आवाज सुनी, लेकिन वह आवाज कभी सच्ची नहीं होती। फिर भी मेरी अंतिम इच्छा यही है कि मैं तुमहारे पास रहूँ। मेरी लाश अपने गाँव में दफन करवा देना और कभी-कभी मेरी कब्र पर आकर एक फूल चढ़ा जाया करना। "

बूटा सिंह की आत्महत्या से पाकिस्तान में भावुकता की एक लहर दौड़ गयी। उसका जनाजा कौमी अहमियत का एक वाकया बन गया। अपनी मौत में भी वह वृद्ध सिख उन भयानक दिनों में शांति का प्रेरणा-पुंज बन गया, जब सारे पंजाब में आग लगी हुई थी। जैनब के रिश्तेदारों और उसके गाँववालों ने बूटा सिंह की लाश को गाँव के कब्रिस्तान में दफन करने की अनुमति नहीं दी। 22 फरवरी 1957 को जैनब के दूसरे शौहर की अगुवाई में गाँव के मर्दों ने बूटा सिंह का जनाजा गाँव मे घुसने नहीं दिया।

जनाजा लेकर उसके साथ आये हुए हजारों पाकिस्तानी, जिनके दिल पर बूटा सिंह की कुर्बानी का बेहद गहरा असर हुआ था, लाहौर लौट गये। वहाँ फूलों की एक ढेर के नीचे बूटा सिंह को दफन कर दिया गया।

बूटा सिंह को मरने के बाद इतनी इज्जत मिलती देखकर जैनब के घरवालों का खून खौल उठा। उन्होंने कुछ बदमाशों को भेजकर लाहौर में उसकी कब्र खुदवा दी। इस दरिंदगी पर सारे शहर में गुस्से की लहर दौड़ गयी। बूटा सिंह की लाश एक बार फिर फूलों के पहले से भी बड़े ढेर के नीचे दफन की गयी।

इस बार सैकड़ों मुसलमान उसकी कब्र पर पहरा देने को तैयार थे. वह इस उम्मीद का प्रमाण था कि शायद आगे चलकर पंजाब से 1947 की घटनाओं वाली घृणा मिट जाय।

जैनब और बूटा सिंह की बेटी जिसका नाम सुल्ताना था. सिर्फ बूटा सिंह की जिन्दगी में ही बहार बनकर नहीं आयी थी. वह अपनी माँ द्वारा ठुकराये जाने और बाप द्वारा मारे जाने की तमाम कोशिशों के बावजूद जिन्दा ही नहीं रही. बल्कि बाद के दिनों में वह सबसे बड़े धर्म -इंसानियत -की जिन्दा मिसाल बन गयी। लाहौर के एक दम्पत्ति ने उसे गोद ले लिया और अपने बच्चों के माफिक परवरिश की। आगे चलकर उसका धूम-धाम से निकाह हुआ और वर्तमान में वह अपने इंजीनियर पति और अपने तीन बच्चों के साथ लीबिया में रहती है।

गैर-मुल्की लड़की

अल्ताफ़ फ़ातिमा

(उर्दू से अनुवाद: शम्भु यादव)

वह गैर-मुल्की लड़की, जो खीरी जिला लखीमपुर से आयी या यों कहिए कि विवाह के लिए लायी गयी थी, महीनों से यहां पड़ी थी और संख्त बोर हो रही थी। इसी बोरियत की अवस्था में उसने अपनी मां को पत्र में लिखा था :

"और सुना अम्मा बी! यहां पाकिस्तान में लोग शक्कर को चीनी कहते हैं और उसको कुंजी-ताले में रखते हैं! और हां, यहाँ लड़के-लड़कियाँ आपस में हंसी-मंजाक तक अँग्रेजी में करते हैं!" बड़ी देर तक वह अपनी कज्जी-कज्जी-सी लिखाई में छोटी-छोटी-सी बातों को महत्त्व दे-देकर लिखती रही। बिलकुल उसी जिम्मेदारी से जिस तरह की जिम्मेदारी गैर-मुल्कों से पत्र लिखते समय बरती जाती है।

और भई वह क्यों न लिखती! वह कोई ऐसी-वैसी तो नहीं थी, खालिस गैर-मुल्की लड़की थी। उसके काले बड़े बक्स में सचमुच का पासपोर्ट और वींजा झिलमिल करते रेशमी कपड़ों की तह में रखा था। सरहद पर उसकी पूरी-पक्की तलाशी हुई थी और स्टेशन से वह सीधी थाने ले जाई गयी थीअपने आगमन की रिपोर्ट दर्ज करवाने के लिए। हर हफ्ते ही वह इसी किस्म के लम्बे-चौड़े पत्र लिखा करती थीपूरी तन्मयता और जोश से, इसलिए कि वह यहाँ संख्त बोर हो रही थी और यह कि पज्जीसियों बातें ऐसी थीं, जिनकी याद हरदम सताया करती थी।

अव्वल तो खीरी का वह लखौरी ईंटों का बना पुराने ढंग का मकान, जिसको आपका जी चाहे तो हवेली भी कह सकते हैं, और उसके दालान-सेहनचियां याद आते थे! और फिर आँगन की दीवार से लगा हुआ बेरी वह छतनार पेड़, जिसमें खट्टे-मीठे बेर लगा करते थे सुर्ख-पाले बेसनी बेरजिनको सुनसान दोपहरों में वह बारीक पिसे हुए नमक-मिर्च के साथ चटखारे ले-लेकर खाया करती थी और फिर ऊपर से कलईदार, नक्शदार कटोरे में भर-भरकर ठंडा पानी पिया करती थी। यह और ऐसी ही कितनी अन्य बातों के अलावा उसको अपनी दादी अम्मा और उनकी जली-कटी बातें भी कुछ कम याद न आती थीं।

पहले पहल जब घर में उसके पाकिस्तान जाने की बातें शुरू हुई तो उसने शुक्र ही किया, अच्छा है, इन कम्बख्तों हरदम लड़ने-झगड़ने वाली बहनों और लम्बी-लम्बी सूखी-सूखी टांगों वाले भाइयों से मुक्ति तो मिलेगी, चौबीस घंटे उसकी जान को आये रहते थे। फिर उसके कान में यह खबरें भी पड़ने लगीं कि उसकी शादी के लिए वहाँ मझली फूफू के पास भेजा जा रहा है।

"उई मझली फूफू! आज तक अपनी शादी तो करवा न पायीं, मेरी खाक करवाएंगी।"

उसने मन-ही-मन सोचा। मगर प्रकट में यों घुन्नी बनी बैठी रही, जैसे उसको कुछ खबर ही न हो। लेकिन यह हकीकत है कि जिस तेजी से पासपोर्ट के पड़ाव तय हो रहे थे, उसी तेजी से उसका मस्तिष्क सोचने में व्यस्त था।

"उई! यह भी कोई बात हुई कि शादी करवाने अपना देश छोड़कर परदेश जाओ। ऐसे क्या पाकिस्तान के लड़कों में सुरखाब के पर लगे हुए हैं? यह क्या इन लोगों के दिल में समायी है, जो अपनी लड़कियों को ढकेल-ढकेल कर भेज रहे हैं। वहाँ के लोग क्या कहेंगे?

"और उन दादी अम्मा को देखो। अब कैसी चुप्पी मारे बैठी हैं! सारे तमाशे अपनी आ/खों से देख रही हैं।" वह सहनची में बैठी सूखी-चमरख दादी अम्मा को चुभती नंजरों से घूरती। क्या तो इत्ती दकियानूस बनती थीं कि जरा दुपट्टा जगह से बेजगह हो और उन्होंने टांग ली। उस दिन जरा-सी कनकिया की डोर लूट ली तो जान को आ गयीं उई, क्या हवाई-दीदा लड़की उठायी है। पूरा लौंडा है। क्या मंजे से भाइयों के संग लगी कनकब्बे लट रही है। और जो जरा आये-गये के सामने जा बैठी तो फौरन टोक देगीए बीबी, तुम क्यों बुर्ज मुंह पर चढ़ी आ रही हो, चलो, जरा शरबत तो बना लाओ।

और अब एकदम ऐसी रोशन-खयाल हो गयीं कि यह भी खयाल नहीं कि बेटी उठा पराये देश चलती कर दी। न दुलहा आया, न बरात चढ़ी, न सूत, न कपास और दुलहिन बेंगम चली जा रही हैं जुलाहे से लठम-लठा करने, अब कैसी चुप साधी है बड़ी बी ने! बस, जम्मो का दिन ऐसी ही ऊटपटांग बातें सोचते हुए कट जाता। जो सच पूछो तो, उसका दिल पढ़ने-लिखने से भी उचाट हो गया था। स्कूल जाती और किताबें आला कर डाल देती।

"अरी जम्मो, सुना है तू अपना विवाह रचाने पाकिस्तान जा रही है।" लाजवन्ती की तरह नांजुक और लचकदार सुरजीत कौर ने उसको छेड़ा।

"हां, जा तो रही हूं।" वह मारे बेबसी के ढिठाई और चिड़चिड़ेपन पर उतर आयी।

"इस बेचारी को पाकिस्तानी दुलहा ही जुड़ा।" सशेपी आँखें मटकाती।

"हां, चल, तुझे भी जुड़वा दूं।" फिर वह जलकर सोचती अभी जुड़ा किस कम्बख्त को है? अभी तो बीजा लेकर ढूंढने निकलना है।

"अरी जम्मो! तुझे खबर है, तेरे ससुराल वाले, यानी पाकिस्तान वाले कैसी जबान बोलते हैं?" सुरजीत फिर बात शुरू करती।

"खबर क्यों नहीं, तेरी ही तरह बैठकर 'साडे-फाडे' किया करते हैं वे।" वह जले-कटे जवाब दिये चली जाती।

"भई जम्मो! सुरजीत से अदब-तमीज से बात किया करो। जो सच पूछो तो देश के रिश्ते से यह तुम्हारी ननद लगी। खास-उल-खास शहर लाहौर से आयी है और तुम वहीं चली हो।" कमर-उलनिसा ने अपने हिसाब से बड़ी बुध्दिमत्ता की बात कह दी।

जम्मो का बस चलता तो जूता लेकर इन कमबंख्तों पर पिल पड़ती। नंफरत आ रही थी उसको इन सबकी शक्लें देख-देखकर। खुद तो कमबंख्त अपने अब्बा-अम्मा के कूले से लगी बैठी थीं। एक वही थी, जिसे यूसुफे-गुमगश्ता की तलाश में भेजा जा रहा था। मगर वह यों अपनी शिकस्त मानने वाली न थी। उलटा भभक-भभककर कमर-उलनिसा को कोसना-काटना शुरू कर देती

"अल्लाह करे कमरू, तुम भी पाकिस्तान ही भेजी जाओ। अल्लाह करे बंगाल को फेंकी जाओ।"

"ए जम्मो! तुम तो ऐसी बेजार हो! वहां भी अपने मामू, चाचा, फूफी के लड़के ही होंगे।" कमरू फिर टोकती।

"हुआ करें, हम उनको क्या जानें, लो भई, अब वह वहां के रहने वाले और हम... हम..."जम्मो हकला जाती! दरअसल वह इतनी सीधी थी कि अपना मतलब भी उनको न समझा पाती।

"निगोड़ी जा रही है इस घर से दुलहिन बने और माँग में सिन्दूर भरवाये बिना।" अम्मा बी ने कहा तो दादी अम्मा से था, मगर सुन लिया जम्मो ने। और इसका नतीजा यह हुआ कि जब जरा ही देर बाद चुन्नू झपट्टा मार उसके हाथ से जामुनों का प्याला छीनकर ले गया तो वह उसका बहाना पकड़कर फूट-फूटकर रोयी। और उसने अपने आपको खूब ही तो कोसा, इतना कि सुनकर अम्मा बी ने घर भर को दुत्कार डाला, "अरे भागवानो, अब तो चारों इसको न सताओ। वह तो खुद ही दफा हो रही है। ऐसा हर वक्त उसका पीछा किया कि वतन से बेवतन हो रही है। अब तो सब्र कर लो कुछ दिन।"

और जब अब्बू को पता चला कि उनकी बेटी जामुनों के लिए रो रही है तो खुद उन्होंने उसको गले से लगा लिया, "मैं अपनी बिटिया को जामुनें मंगाकर दूंगा।"

"और अब्बू, कमरख्खें भी!" जम्मो ने सिसकियाँ लेते हुए कहा। उसको खूब पता था कि पाकिस्तान में कमरख्ख नहीं मिलती।

जब उसने कमरख्खों के ढेर सारे कचालू और नमक डालकर फटकी हुई जामुनें खाकर पानी पीया तो दादी अम्मा अपनी फटी-फटी आवांज में चिल्लायीं, "क्यों नेकबंख्त अपनी जान के पीछे पड़ी है। अरी गला बैठ जाएगा। वहाँ वाले क्या कहेंगे कि गला बैठी दुलहिन उतरी है। दादी अम्मा के हिसाबों तो वह उसी दिन से दुलहिन बन चुकी थी, जिस दिन से मंझली फूफू ने पत्र में लिखा था कि यहाँ चन्द अच्छे लड़के, रोंजगार वाले लड़के नंजर में हैं। जम्मो आ जाए तो उसका इन्तंजाम हो सकता है। बस, लड़की भेज दो बाकी सारी बातें मैं खुद निपट लूंगी। और जम्मो का यह था कि जब स्कूल जाने को दिल न चाहता

तो प्याज की गांठ बगल में दबाकर धूप में पड़ जाती। बुखार चढ़ाने की यही तरकीब उसने सुन रखी थी, मगर बुखार न तब कभी चढ़ा और न अब, जो बींजा मिलने वाला था तो बीमार पड़ने की कोई तरकीब काम नहीं कर रही थी।

और यों वह गैर-मुल्की लड़की खीरी से यहाँ आयी या लायी गयी थी और सख्त बोर हो रही थी। इसलिए कि मझली फूफी खुद तो कॉलेज में पढ़ाती थीं और 'मेटर-ऑफ़-फेक्ट' किस्म की हो ही गयी थीं। वह रहती भी बड़े चचा के लड़के के साथ थीं, अब यह था कि बड़े चचा के लड़के यानी छोटे भइया बड़े तने-तने से रहते थे। वह बड़ी कोठी, एयरकंडीशन कमरे, फ्रिज और जनाब बिजली का टोस्टर और ऑवन अल्ला-बल्ला। बैठने को ओपल-स्किार्ड, बात करने को टेलीफोन। भई, यह पाकिस्तान तो बिलकुल अमरीका हो रहा है। उसने सहमकर सोचा, हम बेचारे सीधे-सादे लोग ठहरे। न भइया, पाकिस्तानी दुलहा भी कोई टेढ़ी खीर होगा और अगर उसके घर में यह अट्म-शट्म हुआ तो वह तो ऐसी कुबड़ और बेअंकल-सी थी कि सारी मशीनें तोड़-ताड़ बैठ रहेगी और क्या ताज्जुब इतने बड़े नुकसान पर उसको वापसी का टिकट ही मिल जाए। उसकी बिसात ही कितनी थी। सोलह-सत्रह साल की नौवीं जमात तक पढ़ी हुई। वहाँ के मुट्ठी भर सिमटे-सिमटाये मुस्लिम माहौल में पली हुई कस्बाती लड़की, इससे ज्यादा सोच भी क्या सकती थी?

मझली फूफू की अनुपस्थिति में आये-गये मेहमान एक कोमल-कान्त और लजीली-सी बेहद सादा लड़की को घर में घूमने-फिरते देखकर उसके बारे में पूछताछ करते कि वह कौन है तो फिर जवाबदेह भाभी को ही होना पड़ता। वह उसपर तरस खाने के अन्दांज में उनको बडे विस्तार से बताती। सारांश यह होता है कि बेचारी शादी के लिए यहाँ आयी है। बात यह है कि सारे ढंग के लड़के तो यहाँ हैं।

और वह मन-ही-मन में कुड़कुड़ाती बड़े ढंग के लड़के हैं यहाँ के। यहाँ के लड़के खाक भी तो उसकी समझ में न आये थे: गहरे-गहरे रंगों की नीली-पीली कमींज, बन्दूक के गिलांफ जैसी पतलूनें, हर दम मुल्क को आप ही गालियाँ देते, मुंह से सड़ी हुई शराब के भभके उड़ते, बस, फुल-स्टाप पर रेडियो लगा है और उसके आगे भटक रहे हैं। बडे भइया के वर्ग और माहौल में उसको ऐसे ही लड़के नंजर आये थे और वह मुँह भर-भर कर एतराज करती।

वह अपने दिल में जल-जलकर सोचती रहती और मेहमान-बीबी एतराज करतीए, अकेली शादी करने आ गयी।

खुद क्या आ गयी, इन बेचारों ने बुला भेजा है। आप वहाँ के हालात तो जानती ही हैं। वहाँ लड़के कहाँ मिलते हैं, यह सब बातें जान-बूझ कर ऊँची आवांज से कहती थीं और जम्मो का खून खौल जाता। कैसी बातें बताती हैं। यह और हुई कि हमारे यहाँ लड़के कहाँ! ए, तो क्या हमारे यहाँ लड़कों का बीज ही

मारा गया. ए हटो. ढेरों लड़के खुद तो मैंने अपनी आँखों से देखे हैं। यह और बात है कि उनके घरों में ऐसी अला-बला नहीं होती। वे बेचारे तो सीधे-सादे कपड़े पहनते और लालटेनों की टिमटिमाती रोशनियों में किताबों पर सिर झुकाये रात गये तक पढ़ा करते हैं।

और जब रिश्तेदारों की लड़कियाँ मिलती तों वह भी उसको हास्यास्पद नंजरों से देखतीं या फिर नसीहतों पर उतर आतींतुम जरा तो मेकअप करना सीखो।

सजी बात तो यह थी कि उनको जम्मो की यह हरकत जरा भी न अच्छी लगी कि वीजा-पासपोर्ट लिये दुलहा ढूँढ़ने दौड़ी चली आयी। यहाँ कौन-सी लड़कों की फसल कट रही है। यहाँ आप तोश पड़ रहा है। कोई अमरीका से लिये चला आ रहा है, तो कोई फ्रांस से। एक तुम भी आ गयीं हिस्सा बँटवाने।

जम्मो का स्वभाव जिद्दी था। मजाल थी जो किसी की नसीहत मान जाती ऊंह बकने दो। वह सोचती, दादी अम्मा तो कहा करती हैं कि ज्यादा सिंगार करने वाली लड़कियों के मुंह पर दुलहिनापे में नूर नहीं उतरता है। अच्छा है, अब कमबंख्तों के मुंह पर ठीकरे फूटेंगे।

_बख्शो, मैं बाज आयी तुम्हारे यहाँ के दुलहा से, तय किये हुए लड़कों में से किसी के साथ सिनेमा-हॉल में, बैठकर ऊँघना पड़ता था। इसलिए कि वह अँग्रेजी फिल्म उसके कतई पल्ले न पड़ती थी, जिसकी हिरोइन बिलकुल सिड़नों जैसे रंग-ढंग की होती और उसके कपड़े इतने बेंकाबू होते कि फिसले पड़ते और वह लड़के इतने बोर कि उसी सिड़न-सी पर मरते हैं। और लड़कियाँ बेचारियाँ उनको खुश करने के लिए उसी के स्टाइल के बाल कटा-कटाकर दीवानी हुई जाती हैं। वह ऐसी ही बेसुरी बातें सोचती होती कि फूफू का हाथ आगे बढ़ता और बड़ी खूबसूरती से उसके भीगे-भीगे उनाबी होंठों पर सुर्ख लिपस्टिक थोप देती ऊंह ! वह अचानक ही रूमाल से होंठ रगड़ डालती तोबा, मार जैसे घी-सा लग गया हो

मझली फूफू सकते में आ जातीं। यह हमारी भावज ने लड़की पाली है। अब ऐसी लड़की को तो वर मिलना मुश्किल ही था।

वह बेदिल से सजती-बनती तो वाकई उजबक-सी उखड़ी-उखड़ी नंजर आती। सच पूछो तो वह उसके भविष्य से निराश होती जा रही थी। इसे तो कोई मरा-टूटा क्लर्क ही कबूल कर ले तो बड़ी बात है, ऐसा तो वहाँ भी मिल जाता। उसको तो बुलाना ही बेकार हुआ।

बाहर से वापस आकर उसको समझातीं, डाँटती और यह हकीकत उसके मस्तिष्क में बिठाने की कोशिश करतीं कि तुम फिंजूल ही अपने आपको अजनबी समझ रही हो आंखिर यह लड़के कोई गैर तो नहीं।

"अपने ही रिश्तेदार और मुलाकातियों के लड़के हैं। यहाँ में और वहाँ में फर्क ही क्या है?"

"हुं ह! फूफू क्यों नहीं। वाह! यह अच्छी रही। फिर आखिर यह वीजा-पासपोर्ट और सरहद की तलाशियां, यह सब क्या बला है। भई, हम तो गैर-मुल्की हैं। "वह भी खास जबान चलाती।

"अच्छा चलो, खामोश रहो। सब बकवास है। कोई फर्क नही। "मझली फूफू एकतरफा फैसला सुना देतीं।

"ऊंह भई, अजीब घपला है!" वह चुप होकर सोचती। मझली फूफू सदा ही उसकी शिकायतों के दफ्तर अम्मा को लिख भेजतीं। लेकिन इस बार तो उन्होंने जाने क्या लिख मारा था कि उसके बड़ी मेहनत से लिखे हुए पत्र के जवाब में, जिसमें उसने बड़ी चालाकी से इशारों-ही-इशारों में लिखा था कि यहाँ के लड़कों में उसको तो कोई सुर्खाब के पर नहीं नंजर आते। और यह कि उसमें और इनमें जबर्दस्त फर्क है, दो मुल्कों और समाजों का। अम्मा बी ने उसको एक लम्बा-चौड़ा और अजीब पत्र लिखा था। कस्बाती माहौल में रहने वाली कम-पढ़ी मां ने बड़ी मेहनत से जो फिलसफा और दृष्टिकोण अपनी टूटी-फूटी और उलझी हुई लिखित में लिखा था, उसका सारांश कुछ यों था कि प्यार, खुशामद नाराजगी और उलाहनों के साथ-साथ उन्होंने उसको समझाया था कि वह फर्क, जो वह अपने और उनके बीच में पाती है, वह मुल्क, नस्ल और समाज का नहीं, बल्कि वर्गों का है। और जब इनसान अपने वर्ग से निकल ऊँचे वर्ग में शामिल हो जाते हैं, तो सारा फर्क अपने आप मिट जाता है। उन्होंने उसको समझाया था कि उसकी बेहतरी इसी में है कि वह मझली फूफू के कहने पर अमल करे और वापसी का खयाल छोड़ दे।

पत्र उसके हाथों से गिर गया। जैसे आँखों के नीचे अँधेरा-सा आ गया हो। ओह, इस दुनिया में किस कदर घपला है। और दुनिया, जिसे वह बहुत छोटी-सी और दिलचस्प-सी समझा करती थी किस कदर विशाल और परेशान-कुन है।

हां, तो क्या वाकई, अब अपने वतन से मेरा नाता टूट गया। उसके दिल की धड़कनों ने रुककर सवाल किया और जैसे उसकी अम्मा के गिरे हुए पत्र ने सिर उठाकर कहा हां मेरी चन्दा, अब तुम इस देश से रिश्ते कायम कर लो। मेरा मतलब उस वर्ग से है।

अच्छा अम्मी, अगर तुम्हारी यही मर्जी है, तो यही सही, अब मैं अपने वर्ग से कोई वास्ता न रखूंगी।

अब तुम मुझे देखोगी तो शायद पहचान भी न पाओ।

उसे गैर-मुल्की लड़की ने खुश्क आँखों और दुखी दिल से सोचा और अपनी अम्मा का पत्र उठाकर बेध्यानी में चूम लिया।

बदला

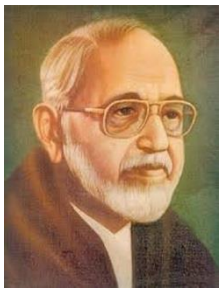

अज्ञेय

अंधेरे डिब्बे में जल्दी-जल्दी सामान ठेल, गोद के आबिद को खिड़की से भीतर सीट पर पटक, बड़ी लड़की जुबैदा को चढ़ा कर सुरैया ने स्वयं भीतर घुस कर गाड़ी के चलने के साथ-साथ लम्बी सांस ले कर पाक परवर्दिगार को याद किया ही था कि उसने देखा, डिब्बे के दूसरे कोने में चादर ओढ़े जो दो आकार बैठे हुए थे, वे अपने मुसलमान भाई नहीं सिख थे! चलती गाड़ी में स्टेशन की बत्तियों से रह-रह कर जो प्रकाश की झलक पड़ती थी, उस में उसे लगा, उन सिखों की स्थिर अपलक आंखों में अमानुषी कुछ है। उन की दृष्टि जैसे उसे देखती है पर उस की काया पर रुकती नहीं, सीधी भेदती हुई चली जाती है; और तेज धार-सा एक अलगाव उन में है, जिसे कोई छू नहीं सकता, छुएगा तो कट जाएगा! रोशनी इस के लिए काफी नहीं थी, पर सुरैया ने मानो कल्पना की दृष्टि से देखा कि उन आंखों में लाल-लाल डोरे पड़े हैं, और...और...वह डर से सिहर गयी। पर गाड़ी तेज चल रही थी, अब दूसरे डिब्बे में जाना असम्भव था। कूद पड़ना एक उपाय होता, किन्तु उतनी तेज गति में बच्चे-कच्चे लेकर कूदने से किसी दूसरे यात्री द्वारा उठा कर बाहर फेंक दिया जाना क्या बहुत बदतर होगा? यह सोचती और ऊपर से झूलती हुई खतरे की चेन के हैंडिल को देखती हुई वह अनिश्चित-सी बैठ गयी...आगे स्टेशन पर देखा जाएगा...एक स्टेशन तक तो कोई खतरा नहीं हैकम से कम अभी तक तो कोई वारदात इस हिस्से हुई नहीं...

"आप कहां तक जाएंगी?"

सुरैया चौंकी। बड़ा सिख पूछ रहा था। कितनी भारी उस की आवाज थी! जो शायद दो स्टेशन के बाद उसे मार कर ट्रेन से बाहर फेंक देगा, वह यहां उसे 'आप' कह कर सम्बोधन करे, इस की विडम्बना पर वह सोचती रह गयी और उत्तर में देर हो गयी। सिख ने फिर पूछा, "आप कितनी दूर जाएंगी?"

सुरैया ने बुरका मुंह से उठा कर पीछे डाल रखा था, सहसा उसे मुंह पर खींचते हुए कहा, "इटावे जा रही हूं।"

सिख ने क्षण-भर सोच कर कहा, "साथ कोई नहीं है?"

उस तनिक-सी देर को लक्ष्य कर के सुरैया ने सोचा, 'हिसाब लगा रहा है कि कितना वक्त मिलेगा मुझे मारने के लिए...या रब, अगले स्टेशन पर कोई और सवारियां आ जाएं...और साथ कोई जरूर बताना चाहिएउस से शायद यह डरा रहे! यद्यपि आज-कल के जमाने में वह सफर में साथ क्या जो डिब्बे में साथ न बैठे...कोई छुरा भोंक दे तो अगले स्टेशन तक बैठी रहना कि कोई आ कर खिड़की के सामने खड़ा हो कर पूछेगा, 'किसी चीज की जरूरत तो नहीं...'

उस ने कहा, "मेरे भाई हैं...दूसरे डिब्बे में..."

आबिद ने चमक कर कहा, "कहां मां? मामू तो लाहौर गये हुए हैं। ..."

सुरैया ने उसे बड़ी जोर से डपट कर कहा, "चुप रह!"

थोड़ी देर बाद सिख ने फिर पूछा "इटावे में आप के अपने लोग हैं?"

"हां। "

सिख फिर चुप रहा। थोड़ी देर बाद बोला, "आप के भाई को आप के साथ बैठना चाहिए था: आज-कल के हालात में कोई अपनों से अलग बैठता है?"

सुरैया मन ही मन सोचने लगी कि कहीं कम्बख्त ताड़ तो नहीं गया कि मेरे साथ कोई नहीं है!

सिख ने मानो अपने-आप से ही कहा, "पर मुसीबत में किसी का कोई नहीं है, सब अपने ही अपने हैं..."

गाड़ी की चाल धीमी हो गयी। छोटा स्टेशन था। सुरैया असमंजस में बैठी थी कि उतरे या बैठी रहे? दो आदमी डिब्बे में और चढ़ आये सुरैया के मन ने तुरन्त कहा, 'हिन्दू' और तब वह सचमुच और भी डर गयी, और थैली-पोटली समेटने लगी।

सिख ने कहा, "आप क्या उतरेंगी?"

"सोचती हूं भाई के पास जा बैठूं..."क्या जीव है इनसान कि ऐसे मौके पर भी झूठ की टट्टी की आड़ बनाए रखता है...और कितनी झीनी आड़, क्योंकि डिब्बा बदलवाने भाई स्वयं न आता? आता कहां से, हो जब न?...

सिख ने कहा, "आप बैठी रहिये। यहां आप को कोई डर नहीं है। मैं आप को अपनी बहन समझता हूं और इन्हें अपने बच्चे...आप को अलीगढ़ तक ठीक-ठीक मैं पहुंचा दूंगा। उस से आगे खतरा भी नहीं है, और वहां से आप के भाई-बन्द भी गाड़ी में आ ही जाएंगे। "

एक हिन्दू ने कहा, "सरदारजी, जाती है तो जाने दो न, आप को क्या?"

सुरैया न सोच पायी कि सिख की बात को, और इस हिन्दू की टिप्पणी को किस अर्थ में ले, पर गाड़ी ने चल कर फैसला कर दिया। वह बैठ गयी।

हिन्दू ने पूछा, "सरदार जी, आप पंजाब से आये हो?"

"जी। "

"कहां घर है आप का?"

"शेखपुरे में था। अब यहीं समझ लीजिए..."

"यहीं? क्या मतलब?"

"जहां मैं हूं, वही घर है! रेल के डिब्बे का कोना। "

हिन्दू ने स्वर को कुछ संयत कर, जैसा गिलास में थोड़ी-सी हमदर्दी उंड़ेल कर सिख की ओर बढ़ाते हुए कहा, "तब तो आप शरणार्थी हैं..."

सिख ने मानो गिलास को 'जी, मैं नहीं पीता' कह कर ठेलते हुए, एक सूखी हंसी हंस कर कहा, जिसकी अनुगूंज हिन्दू महाशय के कान नहीं पकड़ सके, "जी।"

हिन्दू महाशय ने तनिक और दिलचस्पी के साथ कहा, "आप के घर के लोगों पर तो बहुत बुरी बीती होगी..."

सिख की आंखों में एक पल के अंश-भर के लिए अंगार चमक गया, पर वह इस दाने को भी चुगने न बढ़ा। चुप रहा। हिन्दू ने सुरैया की ओर देखते हुए कहा, "दिल्ली में कुछ लोग बताते थे, वहां उन्होंने क्या-क्या जुल्म किये हैं हिन्दुओं और सिक्खों पर। कैसी-कैसी बातें वे बताते थे, क्या बताऊं, जबान पर लाते शर्म आती है। औरतों को नंगा कर के..."

सिख ने अपने पास पोटली बन कर बैठे दूसरे व्यक्ति से कहा, "काका, तुम ऊपर चढ़ कर सो रहो।" स्पष्ट ही वह सिख का लड़का था, और जब उस ने आदेश पा कर उठ कर अपने सोलह-सत्रह बरस के छरहरे बदन को अंगड़ाई में सीधा कर ऊपरी बर्थ की ओर देखा, तब उस की आंखों में भी पिता की आ/खों का प्रतिबिम्ब झलक आया। वह ऊपरी बर्थ पर चढ़ कर लेट गया, नीचे सिख ने अपनी टांगें सीधी की और खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा।

हिन्दू महाशय की बात बीच में रुक गयी थी, उन्होंने फिर आरम्भ किया, "बाप-भाइयों के सामने ही बेटियों-बहनों को नंगा कर के..."

सिख ने कहा, "बाबू साहब, हम ने जो देखा है वह आप हमीं को क्या बताएंगे..." इस बार वह अनुगूंज पहले से ही स्पष्ट थी, लेकिन हिन्दू महाशय ने अब भी नहीं सुनी। मानो शह पा कर बोले, "आप ठीक कहते हैं...हम लोग भला आप का दु: ख कैसे समझ सकते हैं! हमदर्दी हम कर सकते हैं, पर हमदर्दी भी कैसी जब दर्द कितना बड़ा है यही न समझ पाएं! भला बताइए, हम कैसे पूरी तरह समझ सकते हैं कि उन सिखों के मन पर क्या बीती होगी जिन की आंखों के सामने उन की बहू-बेटियों को..."

सिख ने संयम से कांपते हुए स्वर में कहा, "बहू-बेटियां सब की होती हैं, बाबू साहब।"

हिन्दू महाशय तनिक-से अप्रतिभ हुए कि सरदार की बात का ठीक आशय उन की समझ में नहीं आ रहा। किन्तु अधिक देर तक नहीं बोले, "अब तो हिन्दू-सिख भी चेते हैं। बदला लेना बुरा है, लेकिन कहां तक कोई सहेगा! इस दिल्ली में तो उन्होंने डट कर मोर्चे लिए हैं, और कहीं कहीं तो ईंट का जवाब पत्थर से देनेवाली मसल सच्ची कर दिखाई है। सच पूछो तो इलाज ही यही है। सुना है करोलबाग में किसी मुसलमान डॉक्टर की लड़की को..."

अब की बार सिख की वाणी में कोई अनुगूंज नहीं थी, एक प्रकट और रड़कनेवाली रुखाई थी। बोला, "बाबू साहब, औरत की बेइज्जती सब के लिए शर्म की बात है। और बहिन..." यहां सिख सुरैया की ओर मुखातिब हुआ, "आप से माफी मांगता हूं कि आप को यह सुनना पड़ रहा है।"

हिन्दू महाशय ने अचकचा कर कहा, "क्या-क्या-क्या-क्या? मैंने इन से कुछ थोड़े ही कहा है?" फिर मानो अपने को कुछ संभालते हुए, और ढिठाई से कहा, "ये आप के साथ हैं?"

सिख ने और भी रुखाई से कहा, "जी। अलीगढ़ तक मैं पहुंचा रहा हूं।"

सुरैया के मन में किसी ने कहा, 'यह विचारा शरीफ आदमी अलीगढ़ जा रहा है! अलीगढ़-अलीगढ़...' उस ने साहस कर पूछा, "आप अलीगढ़ उतरेंगे?"

"हां।"

"वहां कोई हैं आप के?"

"मेरा कहां कौन है? लड़का तो मेरे साथ है।"

"वहां कैसे जा रहे है? रहेंगे?"

"नहीं, कल लौट आऊंगा।"

"तो...तफरीहन जा रहे हैं!"

"तफरीह!" सिख ने खोये-से स्वर में कहा, "तफरीह?" फिर संभल कर, "नहीं, हम कहीं नहीं जा रहेअभी सोच रहे हैं कि कहां जाएं और जब टिकाऊ कुछ न रहे तब चलती गाड़ी में ही कुछ सोचा जा सकता है..."

सुरैया के मन में फिर किसी ने कोंच कर कहा, 'अलीगढ़...अलीगढ़...बेचारा शरीफ है...'

उस ने कहा, "अलीगढ़...अच्छी जगह नहीं है। आप क्यों जाते हैं?"

हिन्दू महाशय ने भी कहा, जैसे किसी पागल पर तरस खा रहे हों, "भला पूछिए..."

"मुझे क्या अच्छी और क्या बुरी!"

"फिर भी आप को डर नहीं लगता? कोई छुरा ही मार दे रात में..."

सिख ने मुस्करा कर कहा, "उसे कोई नजात समझ सकता है, यह आप ने कभी सोचा है?"

"कैसी बातें करते हैं आप!"

"और क्या! मारेगा भी कौन? या मुसलमान, या हिन्दू। मुसलमान मारेगा, तो जहां घर के और सब लोग गये हैं, वहीं मैं भी जा मिलूंगा; और अगर हिन्दू मारेगा, तो सोच लूंगा कि यही कसर बाकी थीदेश में जो बीमारी फैली है वह अपने शिखर पर पहुंच गयी और अब तन्दुरुस्ती का रास्ता शुरू होगा।"

"मगर भला हिन्दू क्यों मारेगा? हिन्दू लाख बुरा हो, ऐसा काम नहीं करेगा..."

सरदार को एकाएक गुस्सा चढ़ आया; उस ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "रहने दीजिए, बाबू साहब! अभी आप ही जैसे रस ले-ले कर दिल्ली की बातें सुना रहे थेअगर आप के पास छुरा होता और आप को अपने लिए खतरा न होता, तो आप क्याअपने साथ बैठी सवारियों को बख्श देते? इन्हेंया मैं बीच में पड़ता तो मुझे?" हिन्दू महाशय कुछ बोलने को हुए पर हाथ के अधिकारपूर्ण इशारे से उन्हें रोकते हुए सरदार कहता गया, "अब आप सुनना ही चाहते हैं तो सुन लीजिए कान खोल कर। मुझ से आप हमदर्दी दिखाते हैं कि मैं आप का शरणार्थी हूं। हमदर्दी बड़ी चीज है, मैं अपने को निहाल समझता, अगर आप हमदर्दी देने के काबिल होते। लेकिन आप मेरा दर्द कैसे जान सकते हैं, जब आप उसी सांस में दिल्ली की बातें ऐसे बेदर्द ढंग से करते हैं? मुझ से आप हमदर्दी कर सकते होतेउतना दिल आप में होता तो जो बातें आप सुनाना चाहते हैं, उनसे शर्म के मारे आप की जबान बन्द हो गयी होतीसिर नीचा हो गया होता! औरत की बेइंज्जती औरत की बेइंज्जती है, वह हिन्दू या मुसलमान की नहीं, वह इनसान की मां की बेइज्जती है। शेखपुरे में हमारे साथ जो हुआ सो हुआमगर मैं जानता हूं कि उस का मैं बदला कभी नहीं ले सकता हूं क्योंकि उसका बदला हो ही नहीं सकता। मैं बदला दे सकता हूं और वह यही, कि मेरे साथ जो हुआ है, वह और किसी के साथ न हो। इसीलिए दिल्ली और अलीगढ़ के बीच इधर और उधर लोगों को पहुंचता हूं, मैं; मेरे दिन भी कटते हैं और कुछ बदला चुका भी पाता हूं, और इसी तरह, अगर कोई किसी दिन मार देगा तो बदला पूरा हो जाएगाचाहे मुसलमान मारे, चाहे हिन्दू! मेरा मंकसद तो इतना है कि चाहे हिन्दू हो, चाहे सिख हो, चाहे मुसलमान हो, जो मैं ने देखा है वह किसी को न देखना पड़े; और मरने से पहले मेरे घर के लोगों की जो गति हुई, वह परमात्मा न करे किसी की बहू-बेटियों को देखनी पड़े।"

इस के बाद बहुत देर तक गाड़ी में बिलकुल सन्नाटा रहा। अलीगढ़ के पहले जब गाड़ी धीमी हुई, तब सुरैया ने बहुत चाहा कि सरदार से शुक्रिया के दो शब्द कह दे, पर उस के मुंह से भी बोल नहीं निकला।

सरदार ने ही आधे उठ कर ऊपर के बर्थ की ओर पुकारा, "काका, उठो, अलीगढ़ आ गये है।" फिर हिन्दू महाशय की ओर पुकारा, "काका, उठो, अलीगढ़ आ गया है।" फिर हिन्दू महाशय की ओर देख कर बोला, "बाबू साहब, कुछ कड़ी बात कह गया हूं तो मांफ करना, हम लोग तो आप की सरन हैं!"

हिन्दू महाशय की मुद्रा से स्पष्ट दीखा कि वहां वह सिख न उतर रहा होता तो स्वयं उतर कर दूसरे डिब्बे में जा बैठते।

हमारा देश

इब्ने इंशा

"ईरान में कौन रहता है?"

"ईरान में ईरानी कौम रहती है।"

"इंग्लिस्तान (इंग्लैंड) में कौन रहता है?"

"इंग्लिस्तान में अंग्रेज कौम रहती है।"

"फ्रांस में कौन रहता है?"

"फ्रांस में फ्रांसीसी कौम रहती है।"

"यह कौन-सा मुल्क है?"

"यह पाकिस्तान है!"

"इसमें पाकिस्तानी कौम रहती होगी?"

"नहीं! इसमें पाकिस्तानी कौम नहीं रहती।

इसमें सिंधी कौम रहती है।

इसमें पंजाबी कौम रहती है।

इसमें बंगाली कौम रहती है।

इसमें यह कौम रहती है।

इसमें वह कौम रहती हैं।

"लेकिन पंजाबी तो हिन्दुस्तान में भी रहते हैं!

सिंधी तो हिन्दुस्तान में भी रहते हैं!

बंगाली तो हिन्दुस्तान में भी रहते हैं!

फिर यह अलग देश क्यों बनाया था?"

"गलती हुई। मांफ कर दीजिए। अब कभी नहीं बनाएंगे।"

कितने पाकिस्तान

कमलेश्वर

कितना लम्बा सफर है! और यह भी समझ नहीं आता कि यह पाकिस्तान बार-बार आड़े क्यों आता रहा है। सलीमा! मैंने कुछ बिगाड़ा तो नहीं तेरा...तब तूने क्यों अपने को बिगाड़ लिया? तू हंसती है...पर मैं जानता हूं, तेरी इस हंसी में जहर बुझे तीर हैं। यह मेहंदी के फूल नहीं हैं सलीमा, जो सिर्फ हवा के साथ महकते हैं।

हवा! हंसी आती है इस हवा को सोचकर। तूने ही तो कहा था कि मुझे हवा लग गयी है। याद है उन दिनों की?

तुम्हें सब याद है। औरतें कुछ नहीं भूलतीं, सिर्फ जाहिर करती हैं कि भूल गयी हैं। वे ऐसा न करें तो जीना मुश्किल हो जाए। तुम्हें औरत या सलीमा कहते भी मुझे अटपटा लगता है। बन्नो कहने को दिल करता है। वही बन्नो जो मेहंदी के फूलों की खुशबू मिली रहती थी। जब मेरी नाक के पास मेहंदी के फूल लाकर तुम मुंह से उन्हें फूंका करती थीं कि महक उड़ने लगे और कहा करती थीं"इनकी महक तभी उड़ती है जब हवा चलती है..."

सच पूछो तो मुझे वही हवा लग गयी। वही हवा, बन्नो! पर अब तुम्हें बन्नो कहते मन झिझकता है। पता नहीं खुद तुम्हें यह नाम बर्दाश्त होगा या नहीं। और अब इस नाम में रखा भी क्या है।

मेरा मन हुआ था कि उस रात मैं सीढ़ियों से फिर ऊपर चढ़ जाऊं और तुमसे कुछ पूछूं ,कुछ याद दिलाऊं। पर ऐसा क्या था जो तुम्हें याद नहीं होगा!

ओफ! मालूम नहीं कितने पाकिस्तान बन गये एक पाकिस्तान बनने के साथ-साथ। कहां-कहां, कैसे-कैसे, सब बातें उलझकर रह गयीं। सुलझा तो कुछ भी नहीं।

वह रात भी वैसी ही थी। पता नहीं पिछवाड़े का पीपल बोला था या बदरू मियां"कादिर मिया/!...बन गया साला पाकिस्तान...भैयन, अब बन गया पूरा पाकिस्तान..."

कितनी डरावनी थी वह चांदनी रात नीचे आंगन में तुम्हीं पड़ी थीं बन्नो...चांदनी में दूध-नहायी और पिछवाड़े पीपल खड़खड़ा रहा था और बदरू मियां की आवांज जैसे पाताल से आ रही थी"कादिर मियां!...बन गया साला पाकिस्तान..."

दोस्त! इस लम्बे सफर के तीन पड़ाव हैंपहला, जब मुझे बन्नो के मेहंदी के फूलों की हवा लग गयी थी, दूसरा जब इस चांदनी रात में मैंने पहली बार बन्नो को नंगा देखा था और तीसरा तब, जब उस कमरे की चौखट पर बन्नो हाथ रखे खड़ी थी और पूछ रही थी"और है कोई?"

हां था। कोई और भी था। ...कोई।

बन्नो, एक थरथराते अन्धे क्षण के बाद हंसी क्यों थीं? मैंने क्या बिगाड़ा था तेरा! तू किससे बदला ले रही थी? मुझसे? मुनीर से? या पाकिस्तान से? या किसे जलील कर रही थी मुझे, अपने को, मुनीर को या...

पाकिस्तान हमारे बीच बार-बार आ जाता है। यह हमारे या तुम्हारे लिए कोई मुल्क नहीं है, एक दुखद सचाई का नाम है। वह चीज या वजह जो हमें ज्यादा दूर करती है, जो हमारी बातों के बीच एक सन्नाटे की तरह आ जाती है। जो तुम्हारे घरवालों, रिश्तेदारों या धर्मवालों के प्रति दूसरों के एहसास की गहराई को उथला कर देती है। तब उन दूसरों को उनके इस कोई के दुख उतने बड़े नहीं लगते जितने वे होते हैं, उनकी खुशी उतनी खुशी नहीं लगती जितनी वह होती है। कहीं कुछ कम हो जाता है। एहसास की कुछ ऐसी ही आ गयी कमी का नाम शायद पाकिस्तान हैयानी मेहंदी के फूल हों, पर हवा न चले, या कोई फूँक मारकर उनमें गन्ध न पैदा करे। जैसे कि फूल हों, रंग न हो। रंग हो गन्ध न हो। गन्ध हो, हवा न हो। यानी एहसास की रुकी हुई हवा ही पाकिस्तान हो।

सुनो, अगर ऐसा न होता तो मुझे चुनार छोड़कर दरवेश क्यों बनना पड़ता? वही चुनार जहां मेहंदी फूलती थी। मिशन स्कूल के अहाते के पास जहां से हम गंगा घाट के पीपल तले आते थे और राजा भरथरी के किले की टूटी दीवार पर बैठकर इमलियां खाया करते थे।

वह शाम मुझे अच्छी तरह याद है जब कम्पाउंडर जामिन अली ने आकर दादा से कहा था"और तो कुछ नहीं है, पर लोग मानेंगे नहीं। मंगल को कुछ दिनों के लिए कहीं बांजार भेज दीजिए। यहां रहेगा तो बन्नो वाली बात बार-बार उखड़ेगी। शादी तो नहीं हो पाएगी, दंगा हो जाएगा। "

तुम नहीं सोच सकते कि सुनकर मुझपर क्या बीती थी! चुनार छोड़ दूं,फिर छूट ही गया...कैसी होती थीं चुनार की रातें...गंगा का पानी। काशी जाती नावें। भरथरी के किले की सूनी दीवारें और गंगा के किनारे चुंगी की वह कोठरी जिसमें छप्पर में बैठकर मैं बन्नो के आने-जाने का अन्दांज लगाया करता था। नालियों की धार से फटी जमीन वाली वे गलियां जिनसे बन्नो बार-बार गंगा-किनारे आने की कोशिश करती थी और आ नहीं पाती थी। इन्तंजार...इन्तंजार..हमें तो यह भी पता नहीं चला था कि कब हम बड़े मान लिये गये थे। कब हमारा सहज मिलना-जुलना एकाएक बड़ी-बड़ी बातों को बायस बन गया था।

बस्ती में तनाव पैदा हो जाएगा, इसका तो अन्दाज तक नहीं था। यह कैसे और क्यों हुआ, बन्नो? पर तुम्हें भी क्या मालूम होगा। फिर हमने बात ही कहां की?

तीनों पड़ाव ऐसे ही गुजर गयेकहीं रुककर हम बात भी नहीं कर पाए। न तब, जब मेहंदी के फूलों की हवा लगी थी; न तब, जब उस चांदनी रात में तुम्हें पहली बार नंगा देखा था; और न तब, जब चौखट पर हाथ रखे तुम पूछ रही थींऔर है कोई!

मेहंदी के फूल

चुनार! मेरा घर, तुम्हारा घर! मेरे घर से गुजरती थी ईंटोंवाली गलीजो शहर-बांजार को जाती थी। जो गंगा के किनारे-किनारे चलकर भरथरी महाराज के किले के बड़े फाटक तक पहुँचती थी।

जहां से सड़क किले की ओर मुड़ती थी, वहीं थी चुंगी। गंगा-घाट पर लगने वाली नावों से उतरे सामान पर महसूल लगता था। मछली, केंकड़े, कछुए आते थे, मौसम में उस पार से आम भी आते थे। चुंगी वाले मुंशीजी दिन-भर रामनाम जपते और महसूल के बदले में जिंस लेते रहते थे। वे दिन में दस बार पीपल तले के महादेव को गंगाजल चढ़ाते थे और छप्पर में बैठकर तीन-चार लड़कों को पढ़ाया करते थे।

चुंगी के पास कोहनी जैसा मोड़ था, बाईं तरफ खरंजों की सड़क किले को जाती थी, दाईं तरफ से आकर जो सड़क मिलती थी, वह कच्ची थी। उस कच्ची सड़क पर नालियों ने रास्ते बना लिए थे, जिनका पानी गंगाघाट की रेत में सूखता रहता। इसी कच्ची सड़क पर कई गलियां नालियों के साथ-साथ उतरती थींबहते पानी से कटी-फटी गलियां! यही गलियां बन्नो की गलियां थीं।

जहां बन्नो की गलियां खत्म होती थीं, वहां से पथरीली सड़क मिशन स्कूल तक जाती थी जो अंग्रेजों की पुरानी कोठी थी। यहीं पर थी मेहंदी की बाड़ और धतूरों का मैदान।

इस धतूरे के मैदान ने मुझे बड़ा दुख दिया था। जब बस्ती में मुझे और बन्नो को लेकर तनाव पैदा हो गया था तो एक बार बन्नो जैसे-तैसे चुंगी तक आयी और बोली थी"मौलवी साहब के साथ वाले अगर ज्यादा बदमाशी देंगे मंगल, तो मैं धतूरे खाकर सो जाऊंगी। तुम शहर छोड़कर मत जाना .तुमने शहर छोड़ा तो गंगाजी यहां हैं, सोच लेना...।"

ज्यादा बात नहीं हो पाई थी। वह चली गयी थी। मैं कुछ बता भी नहीं पाया था कि मेरे घर में क्या कोहराम मचा हुआ है, कि कैसे रोज बांजार में दादा जी को वे लोग धमकियां दे रहे थे जिन्हें वे पहचानते तक नहीं थे। सभी को डर था कि कहीं किसी दिन मेरी हत्या न कर दी जाए या रात-बिरात कहीं मुसलमान घर में न घुस पड़ें।

पाकिस्तान तो बन चुका था बन्नो, उसके बाद भी तुम्हारे अब्बा भरथरीनामा लिख रहे थे

माता जी पिछले तप से नृप बना, अब नृप से बनूं फकीर।

आंखिर वक्त वफात के, हर होंगे दिलगीर।।

तेरे अपनी खल्क सुपुर्द करी उनके सिर पर सर गरदान किया।

बर्बाद सब सल्तनत करी बन जोगी मुल्क वीरान किया।

लोग कहते थे ड्रिल मास्टर का दिमांग बिगड़ गया है जो भरथरी-नामा लिख रहे हैं। यह तुरक नहीं है, यहीं का कोई काछी-कहार है। तभी हमें पता चला था कि मुसलमान वही है जो ईरानी-तूरानी है, यहां का मुसलमान भी मुसलमान नहीं है...ड्रिल मास्टर साहब को सबने अलग-सा कर दिया था, पर उन्हीं की बब्बो की बात लेकर सब खड़े हो गये थे। जैसे वे ज्यादा बड़े सरपरस्त थे।

तुम्हें नहीं मालूम, पर मुझे मालूम है बब्बो, ड्रिल मास्टर साहब ने कुछ भी नहीं कहा था, इसके सिवा कि जो मौलवी साहब और बाकी लोग ठीक समझें, वही ठीक होगा। वे खुद कुछ सोच ही नहीं पा रहे थे। एक दिन छिपकर आये थे और दादाजी के पास रो पडे थे। उस दिन के बाद वे भरथरीनामा तो लिखते रहे थे पर किसी को सुनाने की हिम्मत नहीं करते थे। वे लिखते रहे, इसका पता मुझे वक्त मिला था जब घरवालों की घबराहट और खुद कुछ न समझे पाने, तय न कर पाने के कारण मैं शहर छोड़ रहा था और चुंगी वाले मुंशीजी ने मुझे चुपचाप विदाई देते-देते एक पुरजा मेरे पसीने से तर हाथ में थमा दिया था।

वह रात बहुत डरावनी थी। बस्ती पर काल मंडरा रहा था। सब दहशत के मारे हुए थे। पता नहीं कब क्या हो जाए। कब 'या अली, या अली' की आवाजें उठने लगें और खूनंखराबा हो जाए। गंगा भी उस दिन घहरा रही थी। तट का पीपल भी अशान्त था। बहुत तेज हवा थी। किला सायं-सायं कर रहा था और पांच-सात हिन्दुओं के साथ हां, कहना पड़ता है बब्बो, हिन्दुओं के साथदादा मुझे स्टेशन छोड़ने आ रहे थे ताकि मैं जिऊं-जागूं...कहीं भी परदेस में रहकर। पहले सोचा गया कि मामा के यहां जौनपुर चला जाऊं और वहां रेलवे वर्कशाप, कुर्ला, में काम कर रहे मौसा के पास रहूं वहीं नौकरी ढूंढ़ लूं।

कैसी थी वह रात, बब्बो! और कितना बेइंज्जत होकर मैं निकल रहा था। दिमांग में हजारों हथौड़े बज रहे थे। एक मन करता था कि लौट पड़ूं, घर से गंडासा उठाऊं और तुम्हारे 'उन मुसलमानों' पर टूट पड़ूं। खून की होली खेलकर तुम्हें जीतूं और न जीत पाऊं तो तुम्हें भी मारकर गंगा में जल-समाधि ले लूं।

पर कहीं दहशत भी होता था और यह खयाल भी आता था कि ड्रिल मास्टर साहब ने तो कुछ भी नहीं कहा है। मुंखालफत भी नहीं कि है...सिवा इसके कि वे चुप रह गये हैं, उन्हें भरथरीनामा लिखना है। अब लगता है कि वे भरथरीनामा न लिख रहे होते तो शायद इतना विरोध न होता...

शहर को साँप सूंघ गया था। दादा को बता दिया था कि अगली सुबह मेरी शक्ल न दिखाई दे। आधी रात तक सोचना-विचारना चलता रहा, फिर आखिरी गाड़ी रह गयी थी पार्सल, जो मुगलसराय जाती थी।

हां, पांच-सात हिन्दुओं के साथ मुझे स्टेशन तक पहुंचाया गया। हम बांजार वाली सड़क से भी नहीं आये। किले वाले सुनसान रास्ते से स्टेशन की सड़क पकड़ी थी। मुंशी जी लालटेन लिए पक्की सड़क तक आये थे। और तभी वह पुरजा उन्होंने पसीजी हथेली में थमा दिया था। वहां तो रोशनी थी नहीं। स्टेशन पर सब साथ थे। पार्सल ढाई बजे रात को छूटी थी। दादा जी कितने परेशान-बेहाल थे। सब बहुत डरे हुए, अपमानित, और शायद इसीलिए बहुत खूंख्वार भी हो रहे थे। लग रहा था कि मुझे शहर से हटा देने के बाद दंगा जरूर होगा। अब ये लौटकर जाने वाले हिन्दू दंगा करेंगे। ढलती रात में ये सोते हुए मुसलमानों को चीर-फाड़ डालेंगे। हिन्दू का हिन्दू होना भी कितना तकलींफदेह हैं बन्नो...यह होते ही कुछ कीमती घट जाता है।

बहुत तकलींफदेह थी वह विदाई। उतरती रात की हवा में खुनकी थी और स्टेशन पर पत्थर का फर्श काफी ठंडा था। सामने विंध्या की पहाड़ियां और ताड़ के पेड़ चुपचाप खड़े थे।

अब तुम्हें क्या बताऊं...क्या कभी सोचा था कि इस तरह मेरा घर छूट जाएगा? अपने शहर से बेइज्जत होकर कोई कहीं भी चैन नहीं पाता। मुझे वे गलियां याद आ रही थीं जिनमें बन्नो आने की कोशिश करती थी। मैं चुंगी पर बैठकर कितनी प्रतीक्षा करता था और जहां मेहंदी के फूल पड़े दिखाई देते थे, समझ लेता था कि बन्नो यहां तक आ पायी है। आगे नहीं बढ़ पायी। किसीने देख लिया होगा, टोका होगा या रोका होगा।

सच कहता हूं तुमसे, उसी दिन से एक पाकिस्तान मेरे सीने में शमशीर की तरह उतर गया था। लोगों के नाम बदल या अधूरे रह गये थे। बस्ती में हवा का बहना बन्द हो गया था। और लगा था कि बन्नो घिर गयी है। शर्म, डर, गुस्सा, आंसू, खून, बदहवासी, पागलपन, प्यारक्या-क्या उबल-धधक रहा था मेरे भीतर। सच कहूं तो यह सब होने के बाद अगर बन्नो मिल भी जाती तो कुछ नहीं होता। जो होना था, हो चुका था।

पार्सल गाड़ी में बैठकर वह पुरजा पढ़ा था। तुम्हारे पास वही कहने को था जो मास्टर साहब के पास था। उसी पुरजे से पता चला कि मास्टर साहब भरथरीनामा लिखते जा रहे हैं

क्यों बनता दरवेश छोड़ दल लश्कर फौज रिसाले को।
क्यों बनखंड में रहता है तज गुल नरगिस गुललाले को।।
क्यों भगवा वेष बनाता है तज अतलस शाल दुशाले को।
क्यों दर-दर अलख जगाता है तज कामरु ढाके बंगाले को।।
क्यों हुआ सैदाई! छोड़ सब बादशाही।।

हां...सैदाई ही कह लो...अतलस शाल-दुशाले और नरगिस गुलेलालासब कुछ तो था सचमुच। नीम, आक, मेहंदी और धतूरे के फूल किस नरगिस से कम थे, बन्नो? पर उस पाकिस्तान का हम क्या करते?

गाड़ी चली आयी और मैं सचमुच दरवेश हो गया। फिर कभी घर लौटने का मोह नहीं हुआ।

मैं जानता था कि मास्टर साहब की सांस भी चुनार में घुट रही होगी। बन्नो की सांसों का कुछ पता नहीं था। बस, इतना-भर लगता था कि उसने गंगा में डूबकर जान नहीं दी होगी। वह होगी। रातों में किसी का बिस्तर गर्म करती होगी। प्यार करती होगी। मार खाती होगी। जिनह को बर्दाश्त करती होगी। बीबी की तरह पूरी ईमानदारी से मन्नतें मानती होगी, मेहंदी रचाती होगी। बच्चों का गू-मूत करती होगी। सुखी होगी, पछताती होगी। सब भूल गयी होगी। जो नहीं भूल पायी होगीवह रुका हुआ वक्त उसका पाकिस्तान बन गया होगा। उसे सताने के लिए...खैर बन्नो...जो हुआ सो हो गया। मैं मुगलसराय से इलाहाबाद आया और इलाहाबाद से बम्बई। कुर्ला की रेलवे वर्कशाप में मौसा ने कुछ काम दिला दिया। कुछ दिन वहीं गुजारे...फिर मै पूना चला गया। अस्पताल की लिंब फैक्टरी में, जहां लकड़ी के हाथ-पैर बनते हैं। मुझे मालूम था कि अब कोई भी चुनार नाम की जगह में जी नहीं पाएगा न मेरा घर, न तुम्हारा घर। पर यह पता नहीं था कि दादा इतनी दूर चले आएंगे और साथ में कई घरों को लेते आएंगे।

सच पूछो तो चुनार में रह ही क्या गया था? जब पाकिस्तान बन जाता है तो आदमी आधा रह जाता है। फसलें तबाह हो जाती हैं। गलियां सिकुड़ जाती हैं और आसमान कट-फट जाता है। बादल रीत जाते हैं और हवाएं नहीं चलतीं, वे कैद हो जाती हैं।

दादा के खत से मालूम हुआ था, कई वर्ष बाद, कि कुछ घर जुलाहों-बढ़ई के साथ लेकर वे फसलों, गलियों, आसमान, बादल और हवा की तलाश में निकल पड़े थे और भिवंडी आ गये थे। यह नहीं मालूम था कि बन्नो का घर भी साथ आया था। ड्रिल मास्टर क्या करते आकर? यह मैंने भी सोचा था। दादा का आना तो ठीक था। वे सूती कपड़े का व्यापार करते थे। आठ घर मुसलमान जुलाहों, दो घर हिन्दू बढ़इयों को लेकर वे भिवंडी आ गये थे। पता नहीं शुरू-शुरू में उन्हें क्या परेशानी हुई।

बन्नो, तुम्हारे बारे में मुझे तब पता चला जब दादा एक बार मुझसे पूना मिलने आये। तब बहुत मामूली तरह से उन्होंने बताया था कि ड्रिल मास्टर साहब का घर भी आया है। उन्हें भिवंडी स्कूल में जगह मिल गयी है और यह भी कि उन्होंने बन्नो की शादी कर दी है। दामाद वहीं उनके साथ वाले मुहल्ले में रहता है, करघे चलाता है। रेशम का बढ़िया कारीगर है।

जिस तरह दादा ने यह खबर दी थी, उससे लग रहा था कि वे जान-बूझकर इसे मामूली बना देने की कोशिश कर रहे थे।

लेकिन मुझे यह नहीं मालूम था बन्नो, कि बाजे मुहल्ले में दादा और तुम्हारा घर एक ही है कि ऊपर वे रहते हैं और तुम लोग नीचे। बाकी लोग बंगालपुरा और नई बस्ती में हैं। शायद मास्टर साहब पिछले पछतावे को भूल सकने के लिए ही ऐसा कर बैठे हों। मन तो बहुत हुआ कि जल्दी से जल्दी चलकर तुम्हें देख आऊं पर सच पूछो तो मन उखड़ा हुआ था। यह सब सुनकर और भी उखड़ गया था कि तुम भी वहीं हो और शादीशुदा हो। और फिर बातों-बातों में दादाजी ने घुमा-फिराकर यह भी कह दिया था कि मैं भिवंडी न आऊं तो बेहतर हैक्योंकि उन्हें मास्टर साहब का खयाल था। वे जानते थे कि मास्टर साहब ने कुछ नहीं किया था, और दादा जी उन्हें मेरी उपस्थिति से दुःखी या जलील नहीं करना चाहते थे। कितनी अजीब स्थिति थी यह...क्या यह नहीं हो सकता था कि घर ऐसा ही रहता और इसमें रहने को मुझे भी जगह मिलती?

मन में तरह-तरह के खयाल आते थे ,दबा हुआ गुस्सा कहीं फूट पड़ा तो?

अगर मेरे भीतर का धधकता हुआ पाकिस्तान फट पड़ा तो? अगर मैंने तुम्हारे आदमी को तुम्हारे साथ न सोने दिया तो? अगर भिवंडी से उसे भी मैं उसी तरह निकाल सका, जैसे, कि कभी मैं निकाला गया था, तो? किसी रात मैं बर्दाश्त न कर पाया और तुम्हारे कमरे में घुस पड़ा तो?

मुझे मालूम है, दादा और मास्टर साहबदोनों एक-दूसरे को अपने मासूम होने का भरोसा दे रहे थे। पर मेरे पास क्या भरोसा था? उनका क्या बिगड़ा था! बिगड़ा तो मेरा था। मैं तभी से एक नकाब लगाये घूम रहा था। हाथों में दस्ताने पहने और कमर में खंजर दबाये।

लेकिन बन्नो, भिवंडी में भी दंगा हो गया। मेरी-तुम्हारी वजह से नहीं उसी एहसास की कमी की वजह से। सुना तो मैं सन्न रह गया। पता नहीं अब क्या हुआ होगा? पांच बरस पहले तो मैं वजह हो सकता था, पर अब तो मैं वहां नहीं था। गया तक नहीं था। इसी वजह से कि तुम दिखाई दोगी और मैं दंगा शुरू कर दूंगा।

पर तुम मुझे दिखाई दीं तो इस हालत में।

रात चांदनी थी और बन्नो नंगी थी

मैं जब भिवंडी पहुंचा तो दंगा खत्म हुए दस-बारह दिन हो चुके थे। घुसते ही बस्ती में जगह-जगह काले चकते दिखाई पड़ते थे। कुछ घर, फिर एक काला मैदान, फिर मकानों-घरों का एक सहमा हुआ झुंड और उसके बाद फिर एक काला मैदान। उड़ती हुई राख। आग और अंगारों की महक अब नहीं थी। पर राख की एक अलग महक होती है, बुझे हुए शोरे जैसी। कुछ तेज खरैंदीजो नथुनों से होकर भीतर तक काट करती है।

सुनो, तुमने भी इस महक को जरूर महसूस किया होगा। ऐसा कौन है इस देश में जो रक्त की महक को न पहचानता हो। जब मैं एस. टी. स्टैंड (बस-अड्डे) पर उतरा, शाम हो रही थी। गश्त से जो दहशत होता है वैसा कुछ नहीं था। वहां, जहां पर सिनेमा के पोस्टर लगे हुए हैं, दो-तीन पुलिसवाले बतियाते खड़े थे। बसें ज्यादातर खाली थीं। वे चुपचाप खड़ी थीं। संगमनेर, अलीबाग, भीरवाड़ा या सिन्नूर जानेवाली बसों की तो बात ही क्या, शिर्डी जाने वाला भी कोई नहीं था।

बस-अड्डे की टीन तले चार-पांच पुलिसवाले और दिखाई दिए, खानाबदोशों की तरह छोटी-सी गृहस्थी जमाये हुए। अगर उनकी बन्दूकें गन्नों के ढेर की तरह जमा न होतीं तो शायद यह भी नहीं मालूम पड़ता कि वे पुलिसवाले हैं।

दोनों सड़कें खाली थीं। डाकबंगले में जहां कलक्टर डेरा डाले पड़े थे, कुछेक लोग चल-फिर रहे थे। थाना कल्याण जाने वाली टैक्सियां भी नहीं थीं।

दंगाग्रस्त इलाकों से गुजरना कैसा लगता है, शायद इसका भी अन्दांज तुम्हें हो, मुझे बहुत नहीं था। एक खास किस्म का सन्नाटा...या टपकन। वीरान रास्ते और साफ-साफ दिखाई देनेवाले खालीपन। कोई देखकर भी नहीं देखता। देखता है तो गौर से देखता है पर बिना किसी इनसानी रिश्ते के। यह क्यों हो जाता है? एहसास इतना क्यों मर जाता है? या कि भरोसा इतना ज्यादा टूट जाता है।

इतने छोटे-से कस्बे में बाजे मोहल्ले का पता पूछना भी दुश्वार हो गया। खैर, जैसे-तैसे मोहल्ला मिला। घर भी मिला पर उसमें सन्नाटा छाया हुआ था। हिन्दुओं ने यह क्या कर डाला थाक्या इतने सन्नाटे में कोई इनसान रह सकता है।

मुझे मालूम था बन्नो, ड्रिल मास्टर साहब, तुम्हारा शौहर मुनीर सब यहीं होंगे। मेरे घरवाले भी होंगे। पर ऊपर के खंड में अंधेरा था। चांदनी रात न होती तो मैं घबरा ही जाता।

सचमुच, एक क्षण के लिए लगा कि अगर मैंने चुनार न छोड़ दिया होता, तो उसकी भी यही दशा होती। फिर बन्नो, तुम्हारा खयाल आया। कैसे तुम्हारे सामने पड़ूंगा। सारा खौलता हुआ खून ठंडा पड़ गया था। मैं जैसे चुनार की उन्हीं गलियों में आ गया था उसी उम्र के साथ।

घर का दरवाजा खुला था। मैंने आहिस्ता से भीतर कदम रखा। एक आंगन-सा। आंगन के एक कोने में दो-एक घड़े रखे थे। उन्हीं के पास दो सुरमई छायाएं थीं। दोनों औरतें थी। एक औरत कमर तक नंगी थी। दूसरी उसी के पास बैठी बार-बार उसके गले तक हाथ ले जाती थी और नंगी छातियों से कमर तक लाती थी। पता नहीं क्या कर रही थी। पर एक औरत की नंगी पीठ दिखाई दे रही थी। वे दोनों औरतें वहां बैठी क्या कर रही थीं, मैं समझ नहीं पाया। सहमकर बाहर आ गया।

बाहर खड़ा था कि ड्रिल मास्टर साहब दिखाई दिये। उन्होंने एक मिनट बाद ही पहचान लिया। लेकिन उन्होंने आवभगत नहीं की। वे सोच ही नहीं पाये कि मुझे किस तरह लें! किस बरस के किस दिन से बात शुरू करें, किस रिश्ते से करें, कहां से करें। वे कुछ कहें इसके पहले ही मैंने उबार लिया, जैसे किसी अजनबी से मैंने पूछा हो, वैसे ही दादा जी के बारे में पूछ दिया।

"वो तो चुनार चले गये परसों!" मास्टर साहब ने कहा।

"परसों..." मैं और क्या कहता।

"हां, रुके नहीं। बहुत-से लोग वापस चले गये है।" वे बोले।

और मैं उसी क्षण समझ गया कि सब बातों के बावजूद दादाजी शायद फिर भी चुनार लौट सकते थे पर मास्टर साहब नहीं। मास्टर साहब के चुनार छोड़ने का सबब वह नहीं था, जो दादाजी का या मेरा रहा होगा। उनका यहां चले आना वक्त का दिया हुआ वनवास था। और वक्त के दिए हुए वनवास से लौट सकना आसान नहीं होता। मुझे तो सिर्फ कुछ लोगों ने वनवास दिया था।

घरवाले वहां नहीं थे, इसलिए कुछ कह भी नहीं पा रहा था। दंगा-ग्रस्त शहरकहां पनाह मिल सकती थी? मास्टर साहब अपने घर टिका लें, यह हो नहीं सकता था।

"सब सामान वगैरह भी ले गये है..."

"नहीं, ज्यादा सामान तो यहीं है..." वे बोले।

"ताला बन्द कर गये है?"

"हां, पर एक चाबी मेरे पास है।" उन्होंने मुझे सकुचाते हुए सहारा दिया।

"मैं एक दिन रुक/गा, वैसे भी कल शाम चला जाना है।" मैंने खामख्वाह कहा, क्योंकि कोई और चारा नहीं था। अजनबी बस्ती में रात पड़े मैं कहां जा सकताथा!

मुझे छोड़कर वे घर में घुस गये। एक मिनट बाद वे एक मोमबत्ती और चाबी लेकर आये और बगल के जीने से ऊपर चढ़ा ले गये। ताला खोलकर मुझे पकाड़ाते हुए बोले"खाना-वाना खाया है?"

"हां" मैंने कहा और भीतर चला गया।

"कुछ जरूरत हो तो बता देना..." वे बोले और नीचे चले गये। भरथरीनामा का शायर काफी समझदार था। 'बता देना'! यह नहीं कि मांग लेना।

बन्धो, कितनी विचित्र थी वह रात! तुम्हें मालूम भी नहीं था कि ऊपर मैं ही हूं। मास्टर साहब ने बताया या नहीं बताया, क्या मालूम। कुछ भी कह दिया होगा। सुबह-सुबह पुलिस न आती तो तुम्हें जिन्दगी-भर पता न चलता कि रात छत पर मंडराने वाली छाया कौन थी।

चारों तरफ सन्नाटा...सन्नाटा...

रात चांदनी थी। हवा बन्द थी। मैं सांस लेने या शायद बन्नो को देख सकने के लिए खुली छत पर खाट डालकर लेट गया था। कुछ देर आहट लेता रहा। शायद कोई आहट तुम्हारी हो बन्नो...पर फिर मन डूब गया। चाहे कितनी गर्मी हो पर औरत को तो आदमी के साथ ही लेटना पड़ता है।

पिछवाड़े वाला पीपल चांदनी में नहाया हुआ था। मैंने खाट ऐसी जगह डाल ली थी, जहां से आंगन में देख सकूं...पर जो कुछ देखा वह बहुत भयावना था।

दो खाटें आंगन में पड़ी थीं। एक पर अम्मी थी, दूसरी पर बन्नो! कितना अजीब लगा था बन्नो को लेटा हुआ देखकर..

चांदनी भर रही थी और बन्नो अपना ब्लाउज खोले, धोती कमर तक सरकाए नंगी पड़ी थी। उसकी नंगी छातियां पानी भरे गुब्बारे की तरह मचल रही थीं और वह अधमरी मछली की तरह आहिस्ता-आहिस्ता बिछल रही थी।

"आये अल्ला..." यह बन्नो की आवांज थी।

"सो जा, सो जा!" अम्मी बोली थी।

"ये फटे जा रहे हैं..." बन्नो ने कहा और उसने अपनी दोनों छातियां कसकर दबा ली थीं जैसे उन्हें निचोड़ रही हो।

अम्मी उठकर बैठ गयीं"ला, मैं सूंत दूं!" कहते हुए उन्होंने बन्नो की भरी छातियों को सूतना शुरू कर दिया था। दूध की छोटी-छोटी फुहारें बन्नो की छातियों से झर रही थी और वह हल्के-हल्के कराहती और सिसकारती थी। दूध की टूटी-टूटी फुहार, जैसे इत्र के फव्वारे में कुछ अटक गया हो। फिर दस-बीस बूंदें एकाएक भलभलाकर टपक पड़ती थीं। दो-चार बूंदें उसके पेट की सलवटों में समाकर पारे की तरह चमकती थीं। उसकी नाभि में भरा दूध बड़े मोती की तरह जगमगा रहा था।

अम्मी उसकी छातियों का दूध अपनी ओढ़नी के कोने से सुखाती और चार-छः बार के बाद वहीं किनारे की पाली में कोना निचोड़ देती थी। मटमैली नाली में पनीले का दूध का पतला सांप कुछ दूर सरककर कहीं घुस जाता था।

ओह बन्नो! यह मैंने क्या देखा था? मैं दहशत के मारे सन्न रह गया था। सारा बदन पसीने से तर था। सिसकारियां और कराहटें और आसमान में लटकते दो डबडबाये स्तन! कुछ दहशत, कुछ उलझन, कुछ बेहद गलत देख लेने को गहरा पछतावा...।

बहुत रात गये मैं छत पर टहलता रहा। जब नीचे शान्ति हो गयी और मैंने देख लिया कि बन्नो धोती का पल्ला छाती पर डालकर लेट गयी है, तब मैं भी लेट गया। यह कैसा दृश्य था? आसमान में जगह-जगह दूध-भरी छातियां लटकी हुई थीं...इधर-उधर...।

आंख लगी ही थी कि एकाएक पिछवाडे खड़खड़ाहट हुई। कोई रो रहा था और नाक पोंछते हुए कह रहा था"कादिर मियां! बन गया साला पाकिस्तान! भैयन, अब बन गया पूरा पाकिस्तान...।"

फिर रोना रुक गया था। कुछ देर बाद वही आवांज फिर आयी थी"कादिर मियां, अब यहीं इहराम बांधेंगे और तलबिया कहेंगे! अपना हज्ज तो हो गया, समझे कादिर मियां!"

अगर पिछवाड़े पीपल न होता तो शायद पाताल से आती यह आवांज सुनकर मैं भाग जाता। पर अब तो खुली आंखों को तरह-तरह के दृश्य दिखाई दे रहे थेआसमान से गिरता खून, अंधेरे में भागती हुई लाशें, बीच बांजार खड़े हुए धड़ और कटी गर्दनों से फूटते हुए फव्वारे। लपटों में नंगे नाचते हुए लोग...।

पीपल न खड़खड़ाता तो मैं बहुत डर जाता। उसके पत्तों की आवांज ऐसे आ रही थी जैसे अस्पताल के दफ्तर में बैठे हुए टाइप बाबू अपनी मशीन पर कुछ छाप रहे हों...बस यही आवांज जानी-पहचानी थी। बाकी सब बहुत भयानक था।

सुबह माथा बेतरह भारी था। आंखों में जलन थी। हाथ-पैर सुन्न थे। उठना पड़ा, क्योंकि पुलिस आयी थी। मास्टर साहब ने आकर जगाया था। वे डरे हुए थे। बोले"पुलिस तुम्हें पूछ रही है...।"

"क्यों?"

"बाहरवाले की तहकीकात करती है। हमसे पूछ रहे थे रात कौन आया है, कहां से आया है, क्यों आया है?"

सुनते ही मेरे आग लग गयी थी। तुम्हीं बताओ, जब मैं घर से उस अंधेरी रात में निकला या निकाला गया था तो कोई पूछने आया था कि इस रात में कौन जा रहा है, कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है?"

पूरे आदमी को न समझना, सिर्फ उसके एक वक्ती हिस्से को समझना ही तो पाकिस्तान है बन्नो! जब पुलिस मुझे सुबह-सुबह जगाकर थाने ले गयी तो मैं समझ गया कि अब हम और तुम दोनों पाकिस्तान में घिर गये है...पर यह घिर जाना कितना दु:खद था!

थाने पर मेरी तहकीकात हुई। मैं यहां क्यों आया हूं? क्या बताता मैं उन्हें? आदमी कहीं क्यों आता-जाता है? पुलिस वाले मुझे बहुत परेशान करते अगर मास्टर साहब वहां खुद न पहुंच गये होते। उन्होंने ही सारी तफ्सील दी थी। उस वक्त उनका मुसलमान होना कारगर साबित हुआ था। पर मुझे लग रहा था कि उस मौजूदा माहौल में मास्टर साहब फिर तो वही गलती नहीं कर रहे थे जो उन्होंने भरथरीनामा शुरू करके की थी।

थाने में सवालों के जवाब देना आसान भी था और टेढ़ा भी। आखिर वहां से निकलकर हम सामने पड़े कटी लकड़ियों के ढ़ेर पर बैठ गये थे। मास्टर साहब चाहते थे कि मैं होश-हवास में आ जाऊं, क्योंकि मेरा रंग फक हो गया था।

वहीं तीन बत्ती के पास दो-तीन लोग और बैठे थे। शायद किसीकी जमानत या तफतीश के लिए आये थे। उनके चेहरे लटके हुए और गमंजदा थे। मौलाना की आंखों में खौंफ था। वे साथ बैठे लोगों को बता रहे थे"रसूल ने कहा है कि सूर तीन बार फूंका जाएगा। पहली बार फूंकेंगे तो लोग घबरा जाएंगे, सब पर खौंफ बरपा हो जाएगा। दूसरी बार जब सूर में फूंक मारी जाएंगी तो सब मर जाएंगे। तीसरी आवांज पर लोग जी उठेंगे और अपने रब के सामने पेश होने के लिए निकल आएंगे...यही होना है...सूर में अभी पहली बार फू/क मारी गयी। "

'भरथरीनामा लिख रहे है?" मैंने पूछा।

"हां...भरमता मन मेरा, आज यहां रैन बसेरा!

कहो बात जल्द कटे रात, जल्द हो फंजर सबेरा!!...

कहते-कहते मास्टर साहब उधर देखने लगे जहां छत की सूनी मुंडेरों पर घास के पीले फूल खिले थे। घनी घास में से अबाबीलें छोटी मछलियों की तरह उछलती थीं। घास की टहनी से पीले फूल चोंच से तोड़कर उड़ती थीं। चोंच से फूल गिर जाते थे तो उड़ते-उड़ते फिर तोड़ती थीं...अबाबीलों का उड़ते-उड़ते या घनी घास में से उछलकर फूलों तक आना, पीले फूलों का तोड़ना, चकराते हुए फूलों का गिरना और अबाबीलों का दूर आसमान से फिर लौटकर आना...।

मास्टर साहब खामोशी से यही देख रहे थे। आखिर मैंने उन्हें टोका"कल रात...।"

"हां, वह बदरू है...पगला गया है। उसके चालीस करधे थे, जलकर राख हो गये। पिछवाड़े पीपल के नीचे ही तब से बैठा है। रात-भर रोता है। गालियां बकता है..." मास्टर साहब बोले।

"घर में कुछ..." मैंने बहुत हिम्मत करके कहा तो जोगी की तरह मास्टर साहब सब बता गये, "हां...बन्नो को तकलीफ हैं। दंगे से तीन दिन पहले बज्जा हुआ था। डॉ. सारंग के जज्जा-बज्जा घर में थी। दंगाइयों ने वहां भी आग लगा दी। रास्ता रुंध गया तो जान बचाने के लिए दूसरी मंजिल से जज्जाओं को फेंका गया। बज्जों को फेंका गया। नौ जज्जा थीं। दो मर गयी। पांच बज्जे मर गये। बन्नो का बज्जा भी गली में गिरकर मर गया। उस वक्त मारकाट मची हुई थी। सवेरे हम बन्नो को जैसे-तैसे ले आये। अब उसके दूध उतरता है तो तकलीफ होती है...।"

कुछ देर खामोशी रही। अबाबीलें घास के फूल तोड़ रही थीं। उठने का बहाना खोजते हुए मैंने कहा, "सोचता हूं, दोपहर ही पूना चला जाऊं...।"

"जा सको तो चुनार चले जाओ। अपने दादा को देख आओ..." मास्टर साहब बोले।

"क्यों, उन्हें कुछ हो गया है क्या?"

"हां...उनकी एक बांह कट गयी है। घर के सामने ही मारकाट हुई।

वे न होते तो शायद हम लोग जिन्दा भी न बचते। हमला तो हम पर हुआ था। वे गली में उतर गये। तभी बांह पर वार हुआ। बायीं बांह कटकर अलग गिर पड़ी। लेकिन उनकी हिम्मत...अपनी ही कटी बा/ह को जमीन से उठाकर वे लड़ते रहे...खून की पिचकारी छूट रही थी। कटी बांह ही उनका हथियार थी...दंगाई तब आग के गोले फेंककर भाग गये। गली में उनकी बांह के चिथड़े पड़े थे। जब उठाया तो बेहोश थे। दाहिने हाथ में कटी बांह की कलाई तब भी जकड़ी हुई थी...पर उस खुदा का लाख-लाख शुक्र। थाना अस्पताल में मरहम-पट्टी हुई। आठ दिन बाद लौटे। दूसरे ही दिन चुनार चले गये...।"

"तो उनकी बांह का क्या हाल था?" मैं सुनकर सन्न रह गया था।

"ठीक था। चल-फिर सकते थे। कहते थे वहीं चुनार अस्पताल में यही करवाते रहेंगे। या खुदा... रहम कर, बेहतर हो देख आओ..." मास्टर साहब ने कहा और अपने आंखें हथेलियों से ढांप लीं।

मेरी चेतना बुझ-सी रही थी। मैं किस जहान में था? ये लोग कौन थे, जिनके बीच मैं था? क्या ये जो कुछ लोग आदमियों की तरह दिखाई पड़ते थेसच थे या कोई खौफनाक सपना? अब तो कटा-फटा आदमी ही सच लगता था। पूरे शरीर का आदमी देखकर दहशत होती थी।

...मैं फिर आकर कमरे में लेट गया था। मास्टर साहब भीतर चले गये थे। तभी नीचे से कुछ आवांजें आयी थीं। अम्मी...मास्टर साहब, बब्बो का आदमी मुनीर और बब्बो सभी थे। मुनीर कह रहा था, "यहां रहने की जिद समझ में नहीं आती..."

"तुम्हारी समझ में नहीं आएगी।" यह आवांज बब्बो की थी, "हम तो पहले इसी धरती से अपना बज्रा लेंगे, जिसने खोया है। फिर जब जगह चले जाएंगे। जहां कहोगे..."

मैंने झांककर देखा। दुबला-पतला मुनीर गुस्से से कांप रहा था। चीखकर बोला, "तो ले अपना बज्रा यहीं से...जिसने मन आए, ले।"

मैं सकते में आ गयाकहीं कुछ...कहीं इसमें मेरा जिक्र तो नहीं था...पर शायद में गलत समझा था। बब्बो भी बिफरकर बोली थी, "तू अब क्या देगा बज्रा मुझे...। अपना खून बेच-बेचकर शराब पीने से फुर्सत है?..." तड़ाक! शायद मुनीर ने बब्बो को मारा था। छोटा-सा कोहराम मच गया था।

बाद में बब्बो मुनीर को कोसती रही थी, "मुझे मालूम नहीं है क्या? जितनी बार बम्बई जाता है, खून बेचकर आता है। फिर रात-भर पड़ा कांपता रहता है..."

यह सब मैं क्या सुन रहा था, बब्बो! तेरे भीतर भी एक और पाकिस्तान रो रहा था। सभी तो अपने-अपने पाकिस्तान लिये हुए तड़प रहे हैं। आधे और अधूरे, कटे-फटे, अंग-भंग।

ओफ्फ ! कितना अंधेरा था उस चांदनी रात में...जब मैं भिवंडी से उसी तरह चला जैसे एक दिन चुनार से चला था। अड्डे से एक टैक्सी थाना जा रही थी। उसी में बैठ लिया था। जब तक बस्ती रही, काले मैदान भी बीच-बीच में नंजर आते रहे। राख की तेंज महक भीतर तक उतरती रही। आसमान में डबडबाए स्तन लटकते रहे। चौराहों पर खड़े मुंडहीन धड़ों से खून के फव्वारे छूटते रहे!

थाना! थाना से बस पकड़कर बम्बई। बम्बई से गाड़ी पकड़कर पूना और पूना में फिर कई दिन बुखार से तपता पड़ा रहा।

मैं सब कुछ भूल जाना चाहता था बब्बो...सिर्फ अपने में सिमट आना चाहता था। उम्र का यह संफर कितना बेहूदा है कि आदमी कटता-फटता जाता है। लहू-लुहान होकर चलता जाता है।

और ऐसे अकेलेपन में अगर कोई यह आवांज सुने कि 'और है कोई?' तो क्या बीत सकती है, इसका अन्दांज किसी को नहीं हो सकता। तुम्हें भी नहीं बब्बो!...

और है कोई?

चार या पांच महीने हो गये थे। दादाजी का खत मिल गया था कि वे फिर भिवण्डी लौट आए हैं। सिंधियों और मारवाड़ियों के कारण माल ज्यादा नहीं मिल पाता इसलिए बांजार मन्दा है। सब कस्बे चल भी नहीं रहे हैं। एक बांह न रहने के कारण बदन का पासंग बिगड़ गया है। मजाक में उन्होंने यह भी लिखा था कि उनका नाम 'टोंटा' पड़ गया है।

बाकी कोई खबर उन्होंने नहीं दी थी सिवा इसके कि मुनीर बब्बो को लेकर बम्बई चला गया है। पता नहीं वे लोग बम्बई में है या पाकिस्तान चले गये। ड्रिल मास्टर नीम-पागल हो गये हैं। घर में ड्रिल करते हैं, स्कूल में कोई पोथी लिखते रहतेहैं।

...उस दिन मैं बम्बई न आता तो तुमसे मुलाकात भी न होती, बब्बो! और कितनी तकलींफदेह थी वह मुलाकात। बाद में मैं पछताता रहा कि काश, मैं ही होता उसकी जगह। तुमने भी क्या सोच होगा कि मैं यही सब करता हूं? पर सच कहूं बब्बो, करता तो मैं भी रहा हूं पर तुम्हारे साथ नहीं। शायद तुम्हारे कारण करता रहा हूं।

पूना का दोस्त नहीं था वह। वहीं बम्बई का था। उसका नाम केदार है। कुछ दिन पूना में साथ रहा था, तभी दोस्ती हुई। मैं भिवंडी जाने के लिए बम्बई आया था। बम्बई उतरकर मन उखड़ भी गया था कि क्या करूंगा वहां जाकर।

उस शाम से तुम्हारा कोई लेना-देना नहीं है बन्नो! वह शाम मैं और केदार साथ गुजारना चाहते थे। कुलावा के एक शराब घर में हमने थोड़ी-सी पी थी। फिर वहां से टहलते हुए हैंडलूम हाउस तक आये थे।

उसी के पास कोई गली थी। अब जाऊं तो पहचान तो लूंगा पर यों याद नहीं है। केदार और मैं दोनों उसी में चले गये। शायद आगे चलकर दाहिने को मुड़े थे। वहीं पर एक सिगरेटवाले की दुकान थी। नीचे कारें खड़ी थीं। लगता था वोहरा मुसलमानों की बस्ती है। बहुत शान्त, साफ-सुथरी।

उस बिल्डिंग में लिफ्ट था। यों सीढ़ियां भी बहुत साफ-सुथरी थीं। केदार के साथ मैं सीढ़ियों से ही ऊपर गया था। पांच मंजिल तक चढ़ते-चढ़ते मेरी सांस फूल आयी थी। उस वक्त घरों की खिड़कियों से खाना बनाने की गन्ध आ रही थी। छठी मंजिल एकदम वीरान थी। जिस फ्लैट की घण्टी केदार ने बजायी थी वह उतना साफ-सुथरा नहीं लगा रहा था।

दरवाजा खुला और हम हिप्पो की तरह हांफते हुए एक सिंधी के सामने खड़े थे। वह हमें उस कमरे में ले गया जिसमें मामूली तरह के सोफे लगे हुए थे। वह सिंधी अब भी हांफ रहा था। लगता था ज्यादा बात करेगा तो अभी उसकी सांस उखड़ जाएगी और फिर कभी लौटकर नहीं आयेगी।

मुझे उलझन हो रही थी। मैं खुली हवा में सांस लेने के लिए खिड़की के पास खड़ा हो गया था। दूर-दूर तक गन्दी छतें नजर आ रही थीं। तरह-तरह के आकारों की। मेरे बारे में केदार ने बता दिया था कि मैं वहीं सोफे पर बैठूंगा और इन्तजार करूंगा। उस हांफते सिंधी ने कोकाकोला की एक बोतल मंगवाकर मेरे लिए रख दी और केदार को लेकर अपनी मेज के पास चला गया। वहां वह केदार को एक गुंजला हुआ काला बुर्का दिखा रहा था। कह क्या रहा था, यह वहां से सुनाई नहींपड़ा।

उसके बाद वे दोनों कहां गुम हो गये, कुछ पता नहीं चला। दो-एक मिनट बाद केदार के हंसने की आवांज बगल से आयी थी।

फिर केदार तो नहीं आया, वह सिंधी उसी तरह हांफता हुआ आया और जोर-जोर से सांस छोड़ता हुआ बोला, "बिअर..." बाकी शब्द उसके हांफने से ही साफ हो रहे थे"पिएंगे, मंगवाऊं?"

"पी लूंगा..." मैंने कहा तो उसने लड़की को हांफकर दिखाया और वह बीयर ले आया। सिंधी ने नहीं पी। मैं ही बैठा पीता रहा।

"आप..." वह उसी तरह हांफ रहा था, "बम्बई..." मतलब था"नहीं रहते..."

"नहीं, पूना रहता हूं।" मैंने कहा।

"घूमने..." वह फिर हांफा।

"काम से आया था..." मैंने उसे बता दिया।

"बिजनेस..." हांफना बदस्तूर था।

"नहीं पर्सनल काम था। भिवंडी जाऊंगा।"

फिर वह बैठा-बैठा तब तक हांफता रहा जब तक केदार सामने आकर नहीं खड़ा हुआ। उसे देखते ही सिंधी हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। मुझे भी उलझन हो रही थी। मैं गिलास खत्म करके फौरन केदार के पास आ गया। हम तीनों बीच वाले बड़े कमरे में आ गये थे। केदार मेरी बीयर के पैसे दे ही रहा था कि बगल का दरवांजा खुला। मैंने इतना ही देखा कि एक औरत के हाथ ने केदार को उसका कन्धा और चाबियों का गुच्छा दिया और उस हाँफते हुए सिंधी के साथ मुझे खड़ा देखकर पूछा"और है कोई?"

मैंने पलटकर देखादरवाजे की चौखट पर हाथ रखे पेटीकोट और ब्लाउज पहने तुम खड़ी थीं बन्नो! और पूछ रही थीं'और है कोई?'

हां! कोई...कोई और भी था।

एक थरथराते अन्धे क्षण के बाद तुमने भी पहचान लिया था और तब कैसी टेढ़ी मुस्कराहट आयी थी, तुम्हारे होठों पर...जहर बुझी मुस्कराहट। या वही घोर तिरस्कार की मुस्कराहट थी? या सहज...कुछ भी नहीं मालूम।

पता नहीं यह बदला तुम मुझसे ले रही थीं, अपने से, मुनीर से या पाकिस्तानसे? मैं सीढ़ियां उतर आया था। आगे-आगे मैं था, पीछे-पीछे केदार। मन हुआ था सीढ़ियां? चढ़ जाऊं और तुमसे पूछूं"बन्नो! क्या यही होना था? मेरा हश्र यही होना था?"

अब कौन-सा शहर है जिसे छोड़कर मैं भाग जाऊं? कहां-कहां भागता रहूं जहां पाकिस्तान न हो। जहां मैं पूरा होकर अपनी तमाम हसरतों और एहसासों को लेकर जी सकूं।

बन्नो! हर जगह पाकिस्तान है जो मुझे-तुम्हें आहत करता है, पीटता है। लगातार पीटता और जलील करता चला जा रहा है।

पतझड़ की आवाज़

कुर्रतुल-ऐन-हैदर

(उर्दू से अनुवाद : शम्भु यादव)

सुबह मैं गली के दरवाजे में खड़ी सब्जीवाले से गोभी की कीमत पर झगड़ रही थी। ऊपर रसोईघर में दाल-चावल उबालने के लिए चढ़ा दिये थे। नौकर सौदा लेने के लिए बांजार जा चुका था। गुसलखाने में वकार साहब बेसिन के ऊपर लगे हुए धुंधले-से शीशे में अपना मुंह देखते हुए गुनगुना रहे थे और शेव करते जाते थे। मैं सब्जीवाले के साथ बहस करने के साथ-साथ सोचने में व्यस्त थी कि रात के खाने के लिए क्या-क्या बना लिया जाए। इतने में सामने एक कार आकर रुकी। एक लड़की ने खिड़की में से झांका और दरवाजा खोलकर बाहर उतर आयी। मैं पैसे गिन रही थी, इसलिए मैंने उसे न देखा। वह एक कदम आगे बढ़ी। अब मैंने सिर उठाकर उस पर नंजर डाली।

"अरे! तुम...!!" उसने हक्की-बक्की होकर कहा और ठिठककर रह गयी। ऐसा लगा जैसे वह मुद्दतों से मुझे मरी हुई सोचे बैठी है और अब मेरा भूत उसके सामने खड़ा है।

उसकी आंखों में एक क्षण के लिए जो डर मैंने देखा, उसकी याद ने मुझे बावला-सा कर दिया है। मैं तो सोच-सोचकर पागल हो जाऊंगी।

यह लड़की, इसकी नाम तक मुझे याद नहीं, और इस समय मैंने झेंप के मारे उससे पूछा भी नहीं, वरना वह कितना बुरा मानती! मेरे साथ दिल्ली के क्वीन मेरी स्कूल में पढ़ती थी। यह बीस साल पहले की बात है। मैं उस समय यही कोई सत्रह वर्ष की रही हूंगी लेकिन मेरा स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि अपनी उम्र से कहीं बड़ी लगती थी और मेरे सौन्दर्य की धूम मचनी शुरू हो चुकी थी। दिल्ली का रिवांज था कि लड़के वालियां स्कूल-स्कूल घूमकर लड़कियां पसन्द करती फिरती थीं और जो लड़की पसन्द आती थी उसके घर 'रुक्का' भिजवा दिया जाता था। उन्हीं दिनों मुझे यह ज्ञात हुआ कि इस लड़की की मां-मौसी आदि ने मुझे पसन्द कर लिया है (स्कूल डे के उत्सव के दिन देखकर) और अब वे मुझे बहू बनाने पर तुली बैठी हैं। ये लोग नूरजहां रोड पर रहते थे और लड़का हाल ही में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया में दो-डेढ़ सौ रुपये मासिक पर नौकर हुआ था। चुनाचे 'रुक्का' मेरे घर भिजवाया गया। लेकिन मेरी अम्माजान मेरे लिए बड़े-बड़े सपने देख रही थीं। मेरे अब्बा दिल्ली से बाहरमेरठ में रहते थे और अभी मेरे विवाह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था इसलिए वह प्रस्ताव एकदम अस्वीकार कर दिया गया।

इसके बाद यह लड़की कुछ दिन तक मेरे साथ कॉलेज में भी पढ़ी। फिर इसकी शादी हो गयी और यह कॉलेज छोड़कर चली गयी। आज बहुत दिनों बाद माल रोड के पिछवाड़े इस गली में मेरी उससे भेंट हुई।

मैंने उससे कहा, "ऊपर आओ, चाय-वाय पीयो, इत्मीनान से बैठकर बातें करेंगे।" लेकिन उसने कहा, "मैं जल्दी में किसी ससुराली रिश्तेदार का मकान ढूंढती हुई इस गली में आ निकली थी। इंशाअल्लाह! मैं फिर कभी जरूर आऊंगी।" इसके बाद उसने वहीं खड़े-खड़े जल्दी-जल्दी एक-एक करके सारी पुरानी सहेलियों के किस्से सुनाएकौन कहां है और क्या कर रही है। सलमा अमुक ब्रिगेडियर की पत्नी है, चार बच्चे हैं, परख़ुदा का पति 'फौरिन सरविस' (विदेश मन्त्रालय) में है, उसकी बड़ी लड़की लन्दन में पढ़ रही है। रेहाना अमुक कॉलेज में प्रिंसिपल हैं। सईदा अमरीका से ढेरों डिग्रियां ले आयी है और कराची में किसी ऊंचे पद पर विराजमान है। कॉलेज की हिन्दू सहेलियों के बारे में भी उसे पता था कि प्रभा का पति इंडियन नेवी में कमांडर है। वह बम्बई में रहती है। सरला ऑल इंडिया रेडियो में स्टेशन डायरेक्टर है और दक्षिण भारत में कहीं है। लोतिका बड़ी प्रसिध्द चित्रकार बन चुकी है और नई दिल्ली में उसका स्टुडियो है, आदि-आदि। वह यह बातें कर रही थी लेकिन उसकी आंखों के डर को मैं न भूल सकी।

उसने कहा, "मैं, सईदा, रेहाना आदि जब भी कराची में इकट्ठा होती हैं तुम्हें बराबर याद करती है।"

"सचमुच...?" मैंने खोखली हंसी हंसकर पूछा। मुझे पता था मुझे किन शब्दों में याद किया जाता होगा। पिच्छल परछाइयां! अरे क्या वे लोग मेरी सहेलियां थीं! स्त्रियां वास्तव में एक-दूसरे के सम्बन्ध में चुडैलें होती हैंकुटनियां कुलटाएं! उसने मुझसे यह नहीं पूछा था कि यहां अंधेरी गली में इस खंडहर जैसे मकान में क्या कर रही हूं। उसे पता था।

स्त्रियों की 'इंटेलीजेंस सर्विस' इतनी तेज होती है कि खुफिया विभाग का विशेषज्ञ भी उसके आगे पानी भरे, और फिर मेरी कहानी तो इतनी दु:ख भरी है। मेरी दशा कोई उल्लेखनीय नहीं। गुमनाम हस्ती हूं इसलिए किसी को मेरी चिन्ता नहीं, स्वयं मुझे भी अपनी चिन्ता नहीं।

मैं तनवीर फातिमा हूं। मेरे मां-बाप मेरठ के रहने वाले थे। वे साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। हमारे यहां बड़ा कड़ा पर्दा किया जाता है। स्वयं मेरा अपने चचाजान, फुफेरे भाइयों से पर्दा था। मैं असीम लाड़-प्यार में पली चहेती लड़की थी। जब मैंने स्कूल में बहुत-से वजीफे ले लिये तो मैट्रिक करने के लिए विशेष रूप से मुझे क्वीन मेरी स्कूल में दाखिल कराया गया। इंटर के लिए अलीगढ़ भेज दी गयी। अलीगढ़ गर्ल्स कॉलेज के दिन मेरे जीवन के सबसे अच्छे दिन थे, क्या स्वप्न भरे मदमाते दिन थे। मैं भावुक नहीं, लेकिन अब भी जब कॉलेज का सहन, लॉन, घास के ऊंचे पौधे पेड़ों पर झुकी बारिश, नुमाइश के मैदान में घूमते हुए काले बुर्कों के परे होस्टल के संकरे-संकरे बरामदों, छोटे-छोटे कमरों का वह कठोर वातावरण याद आता है तो जी डूब-सा जाता है। एम.एस-सी. के लिए फिर दिल्ली आ गयी। यहां कॉलेज में मेरे साथ ये ही सब लड़कियां पढ़ती थीं सईदा, रेहाना, प्रभा, फलानी-ढिमाकी। मुझे लड़कियां पसन्द नहीं आयीं मुझे दुनिया में अधिकतर लोग पसन्द नहीं आये। अधिकतर लोग व्यर्थ ही समय नष्ट करने वाले

हैं। मैं बहुत दम्भी थी। सौन्दर्य ऐसी चीज है कि आदमी का दिमांग खराब होते देर नहीं लगती। फिर मैं तो लाखों में एक थीशीशे का एक झलकता हुआ रंग, लालिमा लिये हुए सुनहरी बाल, एकदम हृष्ट-पुष्ट, बनारसी साड़ी पहन लूं तो बिलकुल कहीं की महारानी लगती थी।

ये विश्वयुध्द के दिन थे या शायद युध्द इसी साल खत्म हुआ था, मुझे ठीक से याद नहीं है। बहरहाल, दिल्ली पर बहार आयी हुई थी। करोड़पति कारोबारियों और भारत-सरकार के बड़े-बड़े अफसरों की लड़कियां हिन्दू-सिख-मुसलमान...लम्बी-लम्बी मोटरों में उड़ी-उड़ी फिरतीं। नित नई पार्टियां, उत्सव, हंगामेआज इन्द्रप्रस्थ कॉलेज में ड्रामा है, कल मिरांडा हाउस में, परसों लेडी इरविन कॉलेज में संगीत-सभा है। लेडी हार्डिंग और सेंट स्टीफेन्स कॉलेज, चेम्सफोर्ड क्लब, रोशनआरा, अमीरिल जीमखानामतलब यह कि हर ओर अलिफ-लैला के बाल बिखरे पड़े थे हर स्थान पर नौजवान फौजी अफसरों और सिविल सर्विस के अविवाहित पदाधिकारियों के ठट डोलते दिखाई देते। एक हंगामा था।

प्रभा और सरला के साथ एक दिन दिलजीतकौर के यहां, जो एक करोड़पति सिख कांट्रैक्टर की लड़की थी, किंग एडवर्ड रोड की एक शानदार कोठी में गार्डन पार्टी में निमन्त्रित थी।

यहां मेरी भेंट मेजर खुशवक्तसिंह से हुई। वह झांसी की तरफ का चौहान राजपूत था। लम्बा-तगड़ा, काला भुजंग, लम्बी-लम्बी ऊपर को मुड़ी हुई नुकीली मूंछें, बेहद चमकते और खूबसूरत दाँत, हंसता तो बहुत अच्छा लगता। गालिब का उपासक था। बात-बात में शेर पढ़ता, कहकहे लगाता और झुक-झुककर बहुत ही सभ्यतापूर्वक सबसे बातें करता। उसने हम सबको दूसरे दिन सिनेमा चलने का निमन्त्रण दिया। सरला, प्रभा एक ही बददिमांग लड़कियां थीं और अच्छी-खासी रूढिवादी थीं। वे लड़कों के साथ बाहर घूमने बिलकुल नहीं जाती थीं। खुशवक्तसिंह दिलजीत के भाई का मित्र था। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या उत्तर दूं कि इतने में सरला ने चुपके से कहा, "खुशवक्त के साथ हरगिज सिनेमा न जाना, बड़ा लोफर लड़का है।" मैं चुप हो गयी।

इन दिनों नई दिल्ली के एक-दो आवारा लड़कियों के किस्से बहुत मशहूर हो रहे थे और मैं सोच-सोचकर ही डरा करती थी। शरीफ खानदानों की लड़कियां अपने मां-बाप की आंखों में धूल झोंककर किस तरह लोगों के साथ रंग-रेलियां मनाती हैं। होस्टल से प्राय: इस प्रकार की लड़कियों के सम्बन्ध में अटकलें लगाया करतीं। वे बहुत ही अजीब और रहस्यमयी हस्तियां मालूम होती, यद्यपि देखने में वे भी हमारी ही तरह की लड़कियां थीं साड़ियां सलवारें पहने, बाकी सुन्दर और पढ़ी-लिखी।

"लोग बदनाम करते हैं जी", सईदा दिमाग पर बड़ा जोर डालकर कहती, "अब ऐसा भी क्या है?"

"वास्तव में हमारी सोसाइटी ही अभी इस योग्य नहीं हुई कि पढ़ी-लिखी लड़कियों को अपने में समो सके।" सरला कहती।

"होता यह है कि लड़कियां सन्तुलन-भावना को खो बैठती हैं।" रेहाना अपना मत प्रकट करती।

जो भी हो, किसी भी तरह विश्वास न होता कि हमारी जैसी हमारे ही साथ की कुछ लड़कियां ऐसी-ऐसी भयानक करतूतें किस तरह करती हैं।

दूसरी शाम को मैं लेबोरेटरी की ओर जा रही थी कि निकल्सन मेमोरियल के पास एक किरमिची रंग की लम्बी-सी कार धीरे-से रुक गयी। उसमें से खुशवक्तसिंह ने झांका और अंधेरे में उसके खूबसूरत दाँत झिलमिलाए।

"अजी देवीजी, यों कहिए कि आप अपना कल वाला एप्वाइंटमेंट भूलगयीं।"

"जी...?" मैंने हड़बड़ाकर कहा।

"हुंजूरेआला चलिए मेरे साथ फौरन! यह शाम का वक्त लेबोरेटरी में घुसकर बैठने का नहीं है। इतना पढ़कर क्या कीजिएगा?"

मैंने बिलकुल यों ही अपने चारों ओर देखा और कार में दुबककर बैठ गयी।

हमने कनॉट प्लेस जाकर एक अंग्रेजी फिल्म देखी।

उसके अगले दिन भी।

इसके बाद मैंने एक हफ्ते तक उसके साथ खूब सैर की। वह 'मेडेंस' में ठहरा हुआ था।

उस सप्ताह के अन्त तक मैं मेजर खुशवक्तसिंह की श्रीमती बन चुकी थी।

मैं साहित्यिक नहीं हूं। मैंने चीनी, जापानी, रूसी, अंग्रेजी या उर्दू कवियों का अध्ययन नहीं किया। साहित्य पढ़ना मेरे विचार से समय बर्बाद करना है। पन्द्रह वर्ष की आयु से विज्ञान ही मेरा ओढ़ना-बिछौना रहा है। मैं नहीं जानती कि आध्यात्मिक कल्पनाएं क्या होती हैं और रहस्यवाद का क्या अर्थ है। काव्य और दर्शन के लिए मेरे पास न तब समय था और न अब है। मैं बड़े-बड़े, उलझे हुए, अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण शब्द भी प्रयोग नहीं कर सकती।

बहरहाल, पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर यह घटना भी कॉलेज में सबको मालूम हो गयी थी, लेकिन मुझमें अपने अन्दर हमेशा से एक विचित्र-सा आत्मविश्वास था। मैंने चिन्ता नहीं की। पहले भी मैं लोगों से बोल-चाल बहुत कम रखती थी। सरला वगैरह का गुट अब मुझे ऐसी निगाहों से देखता जैसे मैं मंगल ग्रह से उतरकर आयी हूं मेरे सिर पर सींग हैं। डाइनिंग हॉल में मेरे बाहर जाने के बाद घंटों मेरे किस्से दुहराए जाते। अपनी इंटेलीजेन्स सार्विस के जरिए मेरे और खुशवक्त के बारे में उनको पल-पल की खबर रहतीहम लोग शाम को कहां गये, रात को नई दिल्ली के कौन से बालरूम में नाचे (खुशवक्त मार्के का डान्सर था, उसने मुझे नाचना भी सिखा दिया था) खुशवक्त ने मुझे कौन-कौन से तोहफे, कौन-कौन सी दुकान से खरीद कर दिये।

खुशवक्तसिंह मुझे मारता बहुत था और मुझसे इतना प्यार करता था जितना आज तक दुनिया में किसी भी पुरुष ने किसी भी स्त्री से न किया होगा।

कई महीने बीत गये। मेरी एम. एस-सी. प्रिवियस की परीक्षा सिर पर आ गयी और मैं पढ़ने में जुट गयी। परीक्षाएं होने के बाद उसने कहा, "जानेमन, दिलरुबा! चलो किसी खामोश-से पहाड़ पर चलेंसोलन, डलहौजी, लेनसाउ।" मैं कुछ दिन के लिए मेरठ गयी और अब्बा से यह कह कर (अम्माजान का, जब मैं थर्ड ईयर में थी, स्वर्गवास हो गया था) दिल्ली वापस आ गयी कि अन्तिम वर्ष के लिए बेहद पढ़ाई करनी है। उत्तर भारत के पहाड़ी स्थानों पर बहुत-से परिचितों के मिलने की सम्भावना थी, इसलिए हम सुदूर दक्षिण में आउटी चले गये। वहां महीना-भर रहे। खुशवक्त की छुट्टियां खत्म हो गयीं तो दिल्ली वापस आकर तिमारपुर के एक गांव में टिक गये।

कॉलेज खुलने से एक हफ्ता पहले मेरी और खुशवक्त की जबर्दस्त लड़ाई हुई। उसने मुझे खूब मारा। इतना मारा कि मेरा चेहरा लहूलुहान हो गया और मेरी बांहों और पिंडलियों पर नील पड़ गये। लड़ाई का कारण उसकी वह मुग्दार ईसाई मंगेतर थी जो न जाने कहां से टपक पड़ी थी और सारे शहर में मेरे खिलाफ जहर उगलती फिर रही थी। अगर उसका बस चलता तो मुझे कच्चा चबा जाती। वह चार सौ बीस लड़की महायुध्द के दिनों में फौज में थी और खुशवक्त को तर्मा के मोर्चे पर मिली थी।

खुशवक्त न जाने किस तरह उसे उसके साथ शादी करने का वचन दे दिया था, पर मुझसे मिलने के बाद वह अब उसकी अंगूठी वापस करने पर तुला बैठा था।

उस रात तिमारपुर के सुनसान बंगले में उसने मेरे हाथ जोड़े और रो रोकर मुझसे कहा कि मैं उससे विवाह कर लूं। अन्यथा वह मर जाएगा। मैंने कहाहरगिंज नहीं, कयामत तक नहीं। मैं शरीफ घराने की सैयदंजादी हूं, भला मैं उस काले तम्बाकू के पिंडे हिन्दू जाति के आदमी से शादी करके खानदान के माथे पर कलंक का टीका लगाती! मैं तो उस सुन्दर और रूपवान किसी बहुत से ऊंचे मुसलमान घराने के कुल-दीप के स्वप्न देख रही थी जो एक दिन देर-सबेर बरात लेकर मुझे ब्याहने आएगा, हमारा आरसी मुसाहिफ होगा, मैं ठाट-बाट से मायके से विदा होकर उसके घर जाऊंगी, छोटी ननदें दरवाजे पर देहली रोककर अपने भाई से नेग के लिए झगड़ेंगी, मीरासिनें ढोलक लिये खड़ी होंगी। क्या-क्या कुछ होगा! मैंने क्या हिन्दू-मुस्लिम शादियों का परिणाम देखा नहीं था। कइयों ने प्रगतिवाद या प्यार की भावना के जोश में हिन्दुओं से शादियां रचायी और सालभर बाद जूतियों में दाल बटी! बच्चों का भविष्य बिगड़ा वह अलगन इधर के रहे न उधर के। मेरे इनकार करने पर खुशवक्त ने जूते-लातों से मार-मारकर मेरा कचूमर निकाल दिया और तीसरे दिन उस डायन काली बला कैथरिन धर्म-दास के साथ आगरे चला गया जहां उस कमीनी लड़की से सिविल मैरिज कर ली।

जब मैं नई टर्म शुरू होने पर होस्टल पहुंची तो इस हुलिये से कि मेरे सिर और मुंह पर पट्टी बंधी हुई थी। अब्बा को मैंने लिख भेजा कि लेबोरेटरी में एक एक्सपेरीमेंट कर रही थी कि एक खतरनाक एसिड भक से उड़ा और उससे मेरा मुंह थोड़ा-सा जल गया। अब बिलकुल ठीक हूं, आप बिलकुल चिन्ता न करें।

लड़कियों को तो पहले ही सारा किस्सा मालूम था, इसलिए उन्होंने औपचारिक रूप से मेरी खैर-खबर न पूछी। इतने बड़े स्केंडल के बाद मुझे होस्टल में रहने की अनुमति न दी जाती, लेकिन होस्टल की वार्डन खुशवक्त सिंह की गहरी दोस्त थी इसलिए सब खामोश रहे। इसके अतिरिक्त किसी के पास किसी प्रकार का प्रमाण भी न था। कॉलेज की लड़कियों को लोग यों भी खामंखाह बदनाम करने पर तुले रहते है।

मुझे वह वक्त अच्छी तरह याद है, जैसे कल ही की बात हो, सुबह के ग्यारह बजे होंगे। रेलवे स्टेशन से लड़कियों के तांगे आकर फाटक में घुस रहे थे, होस्टल के लॉन पर बरगद के पेड़ के नीचे लड़कियां अपना-अपना सामान उतरवाकर रखवा रही थीं। बड़ी चिल्ल-पों मचा रखी थीं। जिस समय मैं अपने तांगे से उतरी व मेरा ढाठे से बन्धा सफेद चेहरा देखकर इतनी आश्चर्यचकित हुई जैसे सबको सांप सूंघ गया हो। मैंने अपना सामान चौकीदार के सिर पर रखवाया और अपने कमरे की ओर चली गयी। दोपहर को जब मैं खाने की मेज पर आकर बैठी तो उन कुलटाओं ने मुझसे इस ढंग से औपचारिक बातें शुरू की जिनसे भली-भांति यह प्रकट हो जाए कि मेरी इस दुर्घटना का वास्तविक कारण उन्हें पता है और मुझे अपमानित होने से बचाने के लिए उसकी चर्चा ही नहीं कर रहीं है। उनमें से एक ने जो उस चंडाल चौकड़ी का केन्द्र और उन सबकी उस्ताद थी, रात को खाने की मेज पर निर्णय दिया कि मैं एक कामी स्त्री हूं। मेरी जासूसों द्वारा यह सूचना तुरन्त ऊपर मेरे पास पहुंच गयी जहां मैं उस समय अपने कमरे में खिड़की के पास टेबुल लैम्प लगाये पढ़ाई में व्यस्त थी और इस तरह की बातें तो अब आम थीं कि बेपर्दगी आंजादी खतरनाक है और ऊंची शिक्षा बदनाम है आदि-आदि।

मैं अपनी सीमा तक शत-प्रतिशत इन बातों से सहमत थी। मैं स्वयं सोचती थी कि कुछ अच्छी-खासी, भली-चंगी, उज्ज शिक्षा-प्राप्त लड़कियां आवारा क्यों हो जाती हैं। एक विचारधारा थी कि वही लड़कियां आवारा होती हैं जिनके पास सूझ-बूझ बहुत कम होती है। मानव-मस्तिष्क कभी भी अपनी बर्बादी की ओर जान-बूझकर कदम नहीं उठाएगा लेकिन मैंने तो अच्छी-खासी समझदार, तेजो-तर्रार लड़कियों को आवारागर्दी करते देखा था। दूसरी विचारधारा थी कि—रुपये-पैसे, ऐशो-आराम का जीवन, कीमती भेंटों का लालच, रोमांस की खोज, साहसिक कार्य करने की अभिलाषा या मात्र उकताहट या पर्दे के बन्धनों

के बाद स्वतंत्रता के वातावरण में प्रवेश कर पुराने बन्धनों से विद्रोह इस आवारगी के कुछ कारण है। ये सब बातें अवश्य होंगी, अन्यथा और क्या कारण हो सकता है?

मैं अपनी पहली तिमाही परीक्षा से छूटी थी कि खुशवक्त भी आ पहुंचा। उसने मुझे लेबोरेटरी में फोन किया कि मैं नरूला में छः बजे उससे मिलूं। मैंने ऐसा ही किया। वह कैथरिन को अपने मां-बाप के पास छोड़कर एक सरकारी काम से दिल्ली आया था। इस बार हम हवाई जहाज से एक सप्ताह के लिए बम्बई चले गये।

इसके बाद हर दूसरे-तीसरे महीने मिलना होता रहा। एक साल बीत गया। इस बार जब वह दिल्ली आया तो उसने अपने एक निकटतम मित्र को मुझे लेने के लिए मोटर लेकर भेजा क्योंकि वह लखनऊ से लाहौर जाते हुए पालम पर कुछ घंटों के लिए ठहरा था। यह मित्र दिल्ली के एक बहुत बड़े मुसलमान व्यापारी का लड़का था। लड़का तो खैर नहीं कहना चाहिए, उस समय वह चालीस के पेटे में रहा होगाबीवी-बच्चोंवाला। ताड़-सा कद। बेहद गलत अंग्रेजी बोलता था, काला, बदसूरत बिलकुल चिड़ीमार की शक्ल, होशो-हवाश ठीक-ठाक।

खुशवक्त इस बार दिल्ली से गया तो फिर कभी वापस न आया क्योंकि अब मैं फारूक की पत्नी बन चुकी थी।

फारूक के साथ अब मैं उसकी मंगेतर की हैसियत से बाकायदा दिल्ली की ऊंची सोसायटी में शामिल हो गयी। मुसलमानों में तो चार शादियां तक उचित हैं, इसलिए कोई बहुत बड़ी बात न थी, अर्थात धर्म की दृष्टि से कि वह अपनी अनपढ़, अधेड़ उम्र की पर्दे की पत्नी के होते हुए एक पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करना चाहता था, जो चार आदमियों में ढंग से बैठ सके और फिर धनिक वर्ग में सब कुछ उचित है। यह तो हमारे मध्यवर्गीय समाज के ही नियम हैं कि यह न करो, वह न करो। लम्बी छुट्टियों के दिनों में फारूक ने भी मुझे खूब सैर करायीकलकत्ता, लखनऊ, अजमेरकौन-सी जगह थी जो मैंने उसके साथ न देखी। उसने मुझे हीरे-जवाहरात के गहनों से लाद दिया। अब्बा को लिख भेजती थी कि यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के साथ 'टूर' पर जा रही हूं या अमुक स्थान पर साइंस कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए मुझे बुलाया गया है, लेकिन साथ-ही-साथ मुझे अपनी शिक्षा का रिकार्ड ऊंचा रखने की धुन थी। फाइनल परीक्षा में मैंने बहुत ही खराब पर्चे किये और परीक्षाएं समाप्त होते ही घर चली गयी।

उन्हीं दिनों दिल्ली में गड़बड़ी शुरू हुई और लड़ाई-झगड़ों को भूचाल आ गया। फारूक ने मुझे मेरठ पत्र लिखा कि तुम अविलम्ब पाकिस्तान चली जाओ, मैं तुमसे वहीं मिलूंगा। मेरा पहले ही से यह इरादा था। अब्बा भी बेहद परेशान थे और यही चाहते कि इन हालात में मैं हिन्दुस्तान में न रुकूं, यहां मुसलमान लड़कियों की इज्जतें निश्चित रूप से खतरे में हैं। पाकिस्तान अपना इस्लामी देश था, उसकी तो बात

ही क्या थी। अब्बा जमीन-जायदाद वगैरह के कारण अभी देश छोड़कर नहीं जा सकते थे। मेरे दोनों भाई बहुत छोटे-छोटे थे और अम्माजान के स्वर्गवास के बाद अब्बा ने उनको मेरी फूफी के पास हैदराबाद दकन भेज दिया था। मेरा परिणाम निकल चुका था और मैं तीसरी श्रेणी में पास हुई थी। मेरा दिल टूट गया। जब बवलों को जोर कुछ कम हुआ तो मैं हवाई जहाज से लाहौर आ गयी। फारूक मेरे साथ आया। उसने यह कार्यक्रम बनाया था कि अपने कारोबार की एक ब्रांच पाकिस्तान में स्थापित करके लाहौर उसका हेड ऑफिस रखेगा। मुझे उसका मालिक बनाएगा और वहीं मुससे शादी कर लेगा। वह दिल्ली छोड़ नहीं रहा था क्योंकि उसके बाप बड़े उदारवादी विचारों के आदमी थे। योजना यह बनी कि वह हर दूसरे-तीसरे महीने दिल्ली से लाहौर आता रहेगा। लाहौर अफरा-तफरी थी। यद्यपि एक-से-एक अच्छी कोठी अलाट हो सकती थी लेकिन फारूक यहां किसी को जानता न था। बहरहाल, सन्तनगर में एक छोटा-सा मकान मेरे नाम अलाट कराके उसने मुझे वहां छोड़ दिया और मेरी देख-भाल, सहायता के लिए अपने एक दूर के रिश्तेदार कुटुम्ब को मेरे पास छोड़ दिया जो शरणार्थी होकर लाहौर आया था और मारे-मारे फिर रहा था।

मैं जीवन के इस अचानक परिवर्तन से इतनी हक्की-बक्की थी कि मेरी समझ में न आता था कि क्या हो गया! कहां अविभाज्य भारत की वह भरपूर, दिलचस्प, रंगारंग दुनिया, कहां सन् 48 के लाहौर का वह छोटा और अंधेरा मकान! देश त्याग! अल्लाहो-अकबर मैंने कैसे-कैसे दिल हिला देने वाले दिन देखे हैं।

मेरा मस्तिष्क इतना खोखला हो चुका था कि मैंने नौकरी ढूंढ़ने की भी कोई कोशिश नहीं की। रुपये-पैसे की ओर से चिन्ता न थी, क्योंकि फारूक मेरे नाम दस हजार रुपये जमा करा गया थासिर्फ दस हजार, वह स्वयं करोड़ों का आदमी था, लेकिन उस समय मेरी समझ में कुछ न आता था, अब भी नहीं आता।

दिन बीतते गये। मैं सुबह से शाम तक पंलग पर पड़ी फारूक की मौसी या नानी, जो कुछ भी हो वे बड़ी थीं, उनके देश-त्याग की आपत्तियों की रामकहानी और उनकी साबकाए-इमारत के किस्से सुन करती और पान-पर-पान खाती या उनकी पढ़नेवाली बेटी को एलजबरा-ज्योमेट्री सिखाया करती। उनका बेटा बराए नाम फारूक के कारोबार की देखभाल कर रहा था।

फारूक साल में पांच-छः चक्कर लगा लेता। अब लाहौर का जीवन धीरे-धीरे साधारण होता जा रहा था। उसके आने से मेरे दिन कुछ अच्छी तरह कटते। उसकी मौसी बड़े प्रयत्न से दिल्ली के खाने तैयार करती। मैं माल के हेयर ड्रेसर के यहां जाकर अपने बाल सेट करवाती। शाम को हम दोनों जीमखाना क्लब चले जाते और वहां एक कोने की मेज पर बियर के गिलास सामने रखे फारूक मुझे दिल्ली की घटनाएं सुनाता। वह बेथके बोले जाता या कुछ देर के लिए चुप होकर कमरे में आनेवाली अजनबी सूरतों को देखता रहता। उसने शादी की कभी कोई चर्चा नहीं की। मैंने भी उससे नहीं कहा। मैं अब उकता

चुकी थी। किसी चीज से कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब वह दिल्ली चला जाता तो हर पन्द्रहवें दिन मैं अपनी कुशलता का पत्र और उसके कारोबार का हाल लिख भेजती और लिख देती कि इस बार आये तो कनाट प्लेस या चांदनी चौक की अमुक दुकान से अमुक-अमुक प्रकार की साड़ियां लेता आये क्योंकि पाकिस्तान में ऐसी साड़ियां नापैद हैं।

एक दिन मेरठ से चाचा मियां का पत्र आया कि अब्बाजान का स्वर्गवास हो गया।

"जब हमदे मस्सल न रहे कौन रहेगा?"

मैं मनोभावों से परिचित नहीं हूं, लेकिन अब्बा मुझ पर जान छिड़कते थे। उनकी मृत्यु का मुझे बड़ा दुःख हुआसदमा पहुंचा। फारूक ने मुझे बड़े प्यार से दिलासा-भरे पत्र लिखे तो तनिक ढाढ़स बन्धी। उसने लिखा, "नमांज पढ़ा करो! बहुत बुरा वक्त है। दुनिया में काली आंधी चल रही है, सरज डेढ़ बलम पर आया चाहता है। एक पल का भरोसा नहीं।" सारे व्यापारियों की तरह वह भी बड़ा धार्मिक और अन्धविश्वासी था। नियमपूर्वक अजमेर शरीफ जाता, निजूमियों, रम्मानों, पंडितों, सियानों, पीरो, फकीरों, शकुन-अपशकुनों, स्वप्नों का परिणामअर्थात प्रत्येक चीज में विश्वास करता था। एकाध महीने मैंने नमांज भी पढ़ी लेकिन जब मैं सिजदा करती तो जी चाहता कि जोर-जोर से हंसू।

देश में साइंस की प्राध्यापिकाओं की बडी मांग थी। जब मुझे एक स्थानीय कॉलेजवालों ने बहुत विवश किया तो मैंने पढ़ाना शुरू कर दिया, यद्यपि टीचरी करने से मुझे सख्त नफरत है। कुछ समय बाद मुझे पंजाब के एक पिछड़े जिले के गर्ल्स कॉलेज में बुला लिया गया। कई साल तक मैंने वहां काम लिया। मुझसे मेरी शिष्याएं प्रायः पूछतीं"हाए अल्लाहे तनवीर आप इतनी प्यारी-सी हैं, आप अपने करोड़पति मंगेतर से शादी क्यों नहीं कर लेती?"

इस प्रश्न का स्वयं मेरे पास भी कोई उत्तर नहीं था।

यह नया देश था, नए लोग, नया सामजिक जीवन यहां किसी को मेरे भूतकाल के बारे में पता न था। कोई भी भला आदमी मुझसे शादी करने को तैयार हो सकता था। (लेकिन भले आदमी, सुन्दर सीधे-सादे सभ्य लोग मुझे पसन्द ही नहीं आते थे, मैं क्या करती!) दिल्ली के किस्से दिल्ली ही में रह गये और फिर मैंने यह देखा है कि एक-से-एक हर्राफा लड़कियां अब ऐसी सदाचारिणी बनी हुई हैं कि देखा ही कीजिए। स्वयं एट्थ हरीराम और रानीखान के उदाहरण मेरे सामने थे।

अब फारूक भी कभी-कभी आता। हम लोग इस तरह मिलते जैसे बीसियों साल के पुराने विवाहित पति-पत्नी हैं जिनके पास सब-के-सब नए विषय खत्म हो चुके हैं और अब शान्ति, विश्राम और ठहराव का समय है। फारूक की बेटी की अभी हाल ही में दिल्ली में शादी हुई है। उसका पति ऑक्सफोर्ड जा चुका है। पत्नी को स्थायी रूप से दमा रहता है। फारूक ने अपने व्यवसाय की शाखाएं बाहर कई देशों

में फैला दी हैं। नैनीताल में नया मकान बनवा रहा है। फारूक अपने खानदान के किस्से, व्यवसाय की बातें मुझे विस्तार से सुनाया करता और मैं उसके लिए पान बनाती रहती।

एक बार मैं छुट्टियों में कॉलेज से लाहौर गयी तो फारूक के पुराने दोस्त सैयद वकार हुसैनखां से मेरी भेंट हुई। लम्बा कद, मोटे-ताजे, काले तवे जैसा रंग, उम्र में पैंतालीस के लगभगअच्छे-खासे देव-पुत्र मालूम होते। उनको पहली बार मैंने नई दिल्ली में देखा था। जहां उनका डांसिंग स्कूल था। ये रामपुर के एक शरीफ घराने के इकलौते बेटे थे, बचपन में घर से भाग गये। सरकसवालों और थियेटर कम्पनियों के साथ देश-विदेश घूमे सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई, लन्दन जाने कहां-कहां। अनगिनत जातियों और नस्लों की स्त्रियों से शादियां रचायीं। उनकी वर्तमान पत्नी उड़ीसा के एक मारवाड़ी महाजन की लड़की थी जिसको ये कलकत्ता से उड़ा लाये थे। बारह-पन्द्रह साल पहले मैंने उसे दिल्ली में देखा था। सांवली-सांवली-सी मंझले कद की लड़की थी। उसकी शक्ल पर अजीब तरह का दर्द बरसता, मगर सुना था कि बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। पति के दुर्व्यवहार से तंग आकर इधर-उधर भाग जाती लेकिन कुछ दिन बाद फिर वापस आ जाती। खां साहब ने कनॉट सरकस की एक बिल्डिंग की तीसरी मंजिल में अंग्रेजी नाच सिखाने का स्कूल खोल रखा था, जिसमें वे, उनकी पत्नी, दो एंगलोइंडियन लड़कियांस्टॉफ में शामिल थीं। महायुध्द के दिनों में स्कूल पर धन बरसा। हर इतवार की सुबह वहां गयी थी। सुना था कि वकार साहब की पत्नी महासती अनुसूइया का अवतार है कि उनके पति आज्ञा देते हैं कि अमुक-अमुक लड़की से बहनापा गांठो और उसे मुझसे मिलाने के लिए ले आओ और वह नेकबख्त ऐसा ही करती। एक बार वह हमारे होस्टल भी आयी और कुछ लड़कियों के सिर हुई कि वह उसके साथ चलकर बारहखम्बा रोड पर चाय पीएं।

भारत-विभाजन के बाद वकार साहब, उनके कथनानुसार, लुट-लुटा-कर लाहौर आ पहुँचे थे और माल रोड के पीछे एक फ्लैट अलाट कराके उसमें अपना स्कूल खोल लिया था। शुरू-शुरू में तो कारोबार मन्दा रहा। दिलों पर मुर्दनी छायी हुई थी, नाचने-गाने का किसे होश था। इस फ्लैट में भारत-विभाजन से पूर्व आर्यसमाजी हिन्दुओं का संगीत-विद्यालय था। लकड़ी के फर्श का हॉल, बंगले में दो छोटे-छोटे कमरे, गुसलखाना, रसोईघर। सामने लकड़ी की बॉलकनी और टूटा-फूटा हिलता हुआ जीना। 'भारत माता संगीत विद्यालय' का बोर्ड बॉलकनी के जंगले पर अब तक टेढ़ा लटका हुआ था। उसे उतारकर 'वकारंज स्कूल ऑफ बॉलरूम एंड टप डांसिंग' का बोर्ड लगा दिया गया। अमरीकन फिल्मी पत्रिकाओं में से काटकर जेन केली, फरीदा स्टीयर, फ्रेंक सीनट्रा, दोर्सडे आदि के रंगीन चित्र हॉल की पुरानी और कमजोर दीवारों पर लगा दी गयी और स्कूल चालू हो गया। रिकार्डों का छोटा-सा पुलन्दा खां साहब दिल्ली से साथ लेते आये थे। ग्रामोफोन और सैकेंडहैंड फर्नीचर फारूक से रुपया कर्ज लेकर उन्होंने

यहां खरीद लिया। कॉलेज के मनचले नौजवान और नई अमीर बनी सोसाइटी की नई फैशनेबल बेगमों को खुदा सलामत रखे, दो-तीन साल में उनका कारोबार खूब चमक गया।

फारूक की मित्रता के कारण मेरा और उनका सम्बन्ध कुछ भाभी और जेठ का-सा हो गया। वे प्राय: मेरी कुशल-क्षेम पूछने आ जाते। उनकी पत्नी घंटों पकाने-रांधने, सीने-पिरोने की बातें किया करतीं। बेचारी मुझ से बिलकुल देवरानी जैसा स्नेह का व्यवहार करतीं। ये पति-पत्नी नि:सन्तान थे, बड़ा उदास, बेरंग, बेतुका-सा बेलगाव जोड़ा था। ऐसे लोग भी दुनिया में मौजूद हैं।

कॉलेज में नई अमरीकी प्लेटनिक चढ़ी। प्रिंसिपल से मेरा झगड़ा हो गया। अगर वह सेर तो मैं सवा सेर। मैं स्वयं कौन अब्दुल हुसैन तानाशाह से कम थी। मैंने स्तीफा कॉलेज कमेटी के सिर पर मारा और फिर सन्तनगर लाहौर वापस आ गयी। मैं पढ़ाते-पढ़ाते उकता चुकी थी। मैं वजीफा लेकर पी-एच. डी. के लिए बाहर जा सकती थी लेकिन इस इरादे को भी कल पर टालती रही। कल अमरीकनों के दफ्तर जाऊंगी जहां वे वजीफे बांटते हैं, कल ब्रिटिश काउन्सिल जाऊंगी, कल शिक्षा-मन्त्रालय में स्कॉलरशिप का प्रार्थनापत्र भेजूंगी।

अधिकतर समय बीत गयाक्या करूंगी? कहीं बाहर जाकर कौन-से गढ़ जीत लूंगी? मुझे जाने किस वस्तु की प्रतीक्षा थी, मुझे पता नहीं। इसी बीच एक दिन वकार भाई मेरे पास बड़े निराश होकर आये और कहने लगे, "तुम्हारी भाभी के दिमांग में फिर कीड़ा उठा। वह वीसा बनवाकर हिन्दुस्तान चली गयी और अब कभी नहीं आएगी। "

"वह कैसे...?" मैंने तनिक लापरवाही से पूछा और उनके लिए चाय का पानी स्टोव पर रख दिया।

"बात यह हुई कि मैंने उन्हें तलाक दे दिया। उनकी जुबान बहुत बढ़ गयी थी। हर समय टर्र-टर्र-टर्र-टर्र..." फिर उन्होंने सामने बिछे पलंग पर बैठकर शुध्द पतियोंवाले ढंग से अपनी पत्नी के विरुध्द शिकायतों का दफ्तर खोल दिया और स्वयं को निरपराध करने की कोशिश में व्यस्त रहे।

मैं बेपरवाही से वह सारी कथा सुनती रही। जिन्दगी की हर बात एकदम बेरंग, महत्त्वहीन, अनावश्यक और निरर्थक थी।

कुछ समय बाद वे मेरे यहां आकर बड़बड़ाए, "नौकरों ने नाक में दम कर रखा है। तुमसे कभी इतना भी नहीं होता कि आकर तनिक भाई के घर की दशा ही ठीक कर जाओ, नौकरों के कान उमेठो! मैं स्कूल भी चलाऊं और घर भी!" उन्होंने इस ढंग से शिकायत-भरे स्वर में कहा जैसे उनके घर का प्रबन्ध करना मेरा कर्तव्यहै।

कुछ दिनों बाद मैं अपना सामान बांधकर वकार साहब के कमरों में जा पहुंची और नृत्य सिखाने के लिए उनकी असिस्टेंट भी बन गयी।

इसके महीने-भर बाद पिछले रविवार को वकार साहब ने एक मौलवी बुलाकर अपने दो चिरकिटों की गवाही में मुझसे निकाह पढ़वा लिया।

अब मैं दिनभर काम-काज में व्यस्त रहती हूं। मेरा रूप-सौन्दर्य भूतकाल की रामकहानियों में शामिल हो चुका है। मुझे शोर-शराबे, पार्टियां, हंगामे बिलकुल पसन्द नहीं लेकिन घर में हर समय चा-चा किल्लियों और रॉक का शोर मचा रहता है। बहरहाल, यही मेरा घर है।

मेरे पास इस समय कई कॉलेजों में कैमिस्ट्री पढ़ाने के ऑफर हैं मगर भला कहीं पारिवारिक धन्धों से फुरसत मिलती है? नौकरों का यह हाल है कि आज रखो, कल गायब। मैंने अधिक की अभिलाषा कभी नहीं की, केवल इतना चाहा कि एक औसत दरजे की कोठी हो और सवारी के लिए मोटर ताकि आराम से आ-जा सकें। समान स्तरवाले लोगों में लज्जित न होना पड़े। चार मिलनेवाले आएं तो बिठाने के लिए ठीक-सी जगह हो, बस!

इस समय हमारी डेढ़-दो हजार रुपये की आय है जो पति-पत्नी के लिए जरूरत से ज्यादा है। आदमी अपने भाग्य से सन्तुष्ट हो जाए तो सारे-के-सारे दुःख मिट जाते हैं।

शादी हो जाने के बाद लड़की के सिर पर छत-सी पड़ जाती है। आज-कल की लड़कियां जाने किस रौ में बह रही हैं, किस तरह ये हाथों से निकल जाती हैं। जितना सोचो, अजीब-सा लगता है, और आश्चर्य होता है।

मैंने तो कभी किसी से बनावटी प्यार तक नहीं किया। खुशवक्त, फारूक और इस पचास वर्षीय कुरूप और भौंडे आदमी के अतिरिक्त, जो मेरा पति है, मैं किसी चौथे आदमी से परिचित तक नहीं। मैं शायद बदमाश तो नहीं थी। न जाने मैं क्या थी और क्या हूं। रेहाना, सईदा, प्रभा और यह लड़की जिसकी आंखों में मुझे देखकर डर पैदा हुआ, शायद वे मुझ से अधिक अच्छी तरह मुझसे परिचित हों!

अब खुशवक्त को याद करने से फायदा? समय बीत चुका। जाने कब तक वह ब्रिगेडियर मेजर जनरल हो चुका हो। आराम की सीमा पर चीनियों के विरुध्द मोर्चा लगाए बैठा हो या हिन्दुस्तान की किसी हरी-भरी सुन्दर छावनी के मैस में बैठा मूंछों पर ताव दे रहा हो और मुस्कराता हो। शायद वह कब कश्मीर मोर्चे पर मारा जा चुका हो! क्या मालूम। अंधेरी रातों में मैं चुपचाप आंखें खोल पड़ी रहती हूं! विज्ञान ने हमें वर्तमान युग के बहुत-से रहस्यों से परिचित करा दिया है। मैंने कैमिस्ट्री पर अनगिनत किताबें पढ़ी हैं, पहरों सोचा है। पर मुझे बड़ा डर लगता है।

खुशवक्त सिंह! खुशवक्तसिंह तुम्हें अब मुझसे मतलब?

अपने आँगन से दूर

ख़दीजा मस्तूर

लाहौर (Lahore) आकर तीन-चार दिन मामू के साथ उनकी सरकारी कोठे में गुजारने पड़े . वह भी इस तरह कि आलिया सारा दिन एक छोटे-से कमरे में बन्द पड़ी रहती। वह हर वक़्त यह सोचती रहती कि इस उदास माहौल में किस तरह जिन्दगी गुजारेगी। हाँ, अम्मा बहुत खुश थी। भाई और अँग्रेज भावज के साथ रहने की बड़ी पुरानी इच्छा अब पूरी हुई थी (Hindi Kahani)। उन्होंने जिन्दगी भर साथ रहने के प्रोग्राम बना लिए थे, और आलिया से नाराज थीं कि वह सबसे अलग-अलग पड़ी रहती है। और कुछ नहीं तो अपनी भाभी से फर-फर अँग्रेजी बोलने का अभ्यास ही कर ले मगर उसने तो इन चार दिनों में सिर्फ बड़ी चाची और बड़े चाचा को कई-कई संफों खत लिखे थे।

पाँचवें दिन मामू ने एक छोटी-सी कोठी का ताला तुड़वा कर अम्मा को उनके घर जाने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने अम्मा को चलते-चलते समझाया कि अँग्रेज औरतें अपनी माँ के साथ भी रहना पसन्द नहीं करतीं।

अम्मा ने आलिया से ये बातें छुपानी चाहीं मगर जब वह अपने नए घर जा रही थी तो मामी ने टूटी-फूटी उर्दू में समझा ही दिया कि सबका अलग-अलग रहना ठीक होता है।

कोठी में एक-एक चीज अपनी जगह पर मौजूद थी। खाने की मेज पर बर्तन करीने से लगे हुए थे और बर्तनों की नक्काशी को धूल ने छुपा दिया था। ऐसा महसूस होता था कि बस अभी पर्दे के पीछे से निकलकर कोई आएगा और खाने के लिए बैठ जाएगा। बावर्चीखाने में पीतल के बर्तन अलमारी में लगे थे और कुछ बर्तन फर्श पर लुढ़के पड़े थे। और ड्राइंगरूम के कालीन और सोफे सब पर धूल विराजमान थी और गुलदान में लगे हुए फूल झड़कर मेंज पर बिखरे हुए थे। सिर्फ काली-काली सूखी शाखें अब तक गुलदान में ठुँसी हुई थीं। सोने के कमरे में बिस्तरों पर पलंगपोश बिछे हुए थे और सिरहाने तिपाई पर रखा हुआ लैम्प औंधा पड़ा था। इस कमरे के साथ छोटे-से कमरे में आतिशदान पर कृष्ण महाराज की मूर्ति रखी थी। माला के फूल झड़कर आसपास बिखरे पड़े थे और गले में सिर्फ पीला डोरा लटका रह गया था।

"भई, इसे तो यहाँ से हटाओ। बाहर बच्चों को दे दो, खेलेंगे। " जब से अम्मा यहाँ आयी थीं, उन्होंने कई बार कहा था।

आलिया ने अम्मा को कोई जवाब नहीं दिया। मूर्ति कई दिन तक यों ही रखी रही। फिर जब इस कमरे को इस्तेमाल किये बगैर अम्मा का गुजारा नामुमकिन हो गया तो आलिया ने मूर्ति को अपने बक्से में छुपा दिया।

दिन बड़ी बोरियत से गुजर रहे थे। बैठे-बैठे उकता गयी थी। उसके खतों के जवाब भी न आते थे।

शामें बड़ी मुश्किल से कटतीं। सहायता-कमेटियाँ घर-घर चक्कर लगाती फिरतीं। अपने शरणार्थी भाइयों की मदद करो। काफिले आ रहे हैं, मदद करो और अम्मा बड़ी दीन बनकर बतातीं कि हम तो खुद शरणार्थी हैं (Kahaniyan)। लोग चले जाते मगर आलिया का जी चाहता अम्मा की आँखों में धूल झोंककर सब कुछ उन्हें दे दे।

मामू और उनकी बेगम कभी-कभी शाम को आ निकलते तो आलिया की समझ में न आता कि वह कौन-से चुहिया के बिल में जा छुपे। अम्मा बौखला जातीं और उनकी समझ में न आता कि अपनी भाभी को किसके सर-आँखों पर बिठा दें।

चन्द दिन तक खामोश बैठे रहने के बाद उसने एक हाई स्कूल में नौकरी की अर्जी दे दी, जो जल्दी ही मंजूर हो गयी और नौकरी ने उसे बहुत-सी परेशानियों और दुखों से बचा लिया।

एक दिन मामू अकेले आये तो उन्होंने बताया कि कोठी अम्मा के नाम एलाट करा दी है। अब उसे किसी भी सूरत में छोड़ना नहीं। फिर उन्होंने फर्नीचर बगैरा की कुछ रसीदें दीं कि अगर कोई पूछे तो ये दिखा देना कि हमने यहाँ आकर सब कुछ खरीदा है।

अम्मा अपने भाई के कारनामों पर खुश होती रहीं, "भाई हो तो ऐसा हो। मेरे आराम के लिए उसने क्या नहीं किया!"

आलिया चुपचाप सब कुछ सुनती रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है, किसी का हक कौन उड़ाए लिये जा रहा है, ये रसीदें कहाँ से आ गयीं? यह कोठी उसकी किस तरह हो गयी? मगर आलिया यह सब कुछ किससे पूछती? अम्मा सिर्फ अम्मा थीं, उसकी तनख्वाह मिलने और कोठी की मालिक बनने के बाद पहले की ही तरह गर्वीली और आत्मतुष्ट।

वक्त घिसट-खिसटकर गुजर रहा था। स्कूल से आकर वह परेशान फिरा करती। आसपास की कोठियों में भी किसी से मिलना-जुलना न था। जाने कहाँ से लोग आकर बस रहे थे।

अम्मा को इतनी फुर्सत ही न मिलती कि इसकी तरफ भी देख लेतीं। सारा दिन कोठी की देखभाल में गुंजर जाता। दस रुपये महीने पर रखी हुई बाई अगर किसी चीज को जरा जोर से रख देती तो अम्मा का कलेजा दुख जाता, "ये इतनी-इतनी महँगी चीजें खरीदी हैं और तुम आपे में नहीं रहतीं। जरा होश से काम लिया करो!"

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि मामू करांची तब्दील हो गये। जब वह विदा हो रहे थे तो अम्मा का रो-रोकर बुरा हाल हो गया। उनकी भाभी इस बेकरारी को देखकर मुसकराती हैं, "हमारा टो बचा लोग बी बहोट डूर-डूर चला जाटा है मगर कोई नहीं रोटा। "

आलिया को उनके चले जाने का न सदमा हुआ, न खुशी। चले गये तो चले गये। उसका उन लोगों से वास्ता ही क्या था ? यहाँ आने के बाद मामू ने कई बार कहा भी था कि आलिया अपने बाप की तरह दिल से उन्हें नापसन्द करती है।

वह यह सब सुनकर हँस दी थी। उस वक्त उसे अब्बा कितनी शिद्दत से याद आते थे! मगर अब तो वह उनकी कब्र तक को दूसरे मुल्क में छोड़ आयी थी। वहाँ से नाता टूट गया था। किसी ने उसके खत का जवाब तक न दिया था।

घास

कुलवन्त सिंह विर्क
(अनुवाद : कीर्ति केसर)

अभी पाकिस्तान बने हुए तीन या चार महीने ही हुए थे। यहां हर चीज उखड़ी-उखड़ी-सी प्रतीत होती थी। थानों और पुलिस चौकियों में सामान के ढेर लगे हुए थे। ट्रंक, पलंग, पलने, मेज, सोफासेट, तस्वीरें सभी अपनी-अपनी जगह से उखड़कर थानों में आ गयी थीं। पलनों और तसवीरों का थाने में क्या काम? किसी समय घरों में इनकी खास जगह बनी हुई होगी। उस समय गृहस्वामियों का यह खयाल होगा कि यदि ये सब उस खास जगह के अलावा किसी और जगह पर रखे जाएं तो बहुत बुरे लगेंगे। पर इस समय ये सब एक ही ढेर में पड़े हुए थे। घरों के बर्तन, आलमारियां रसोई घर और परछतियों में से निकलकर सरकारी दफ्तरों के सामने पड़ी हुई थीं। इनको कभी किसी ने मांजा नहीं, चमकाया नहीं, गिना भी नहीं था। किसी स्त्री का हाथ लगे भी महीनों बीत गये थे। पाकिस्तान में हर चीज उखड़ी-उखड़ी थी। कई घरों में अपनी नांद से उखड़े हुए जानवर भी थे। सहमी हुई नंजरों से वे अपने आसपास देखते और अनजान जगह पर डरते-डरते पांव रखते थे। इस उथल-पुथल में केवल धरती ही अपनी जगह पर टिकी हुई थी और इस धरती पर अनेकों शरणार्थी मारे-मारे फिरते थे। वाहगा कैंप से इन्हें आगे ठेल दिया जाता था और फिर ये शरणार्थी एक जिले से दूसरे जिले और एक गांव से दूसरे गांव जमीन की खोज में डोलने लगते।

शरणार्थी तो शरणार्थी, पुराने निवासी भी उखड़े हुए थे। बिरादरी वालों की बिरादरियां टूट गयी थीं और यारों के यार छूट गये थे। मजदूरों के मिल मालिक चले गये थे, मिल मालिकों के मंजदूर। इन सबकी जगह नए लोग आ गये थे। कैसे थे ये नए लोग मैले और बौराए हुए। पुराने लोगों में घुल-मिल नहीं सकते थे। 'असलामालेकुम' कहकर बातचीत नहीं करते थे। बुलाओ तो बोलते नहीं थे। इन लोगों ने तो गा/वों की नीवें हिला दी थीं। पुराने निवासियों को अपने गांव पराये-से लगे थे क्योंकि वे गांव जिनमें वे जन्मे-पले थे अब पहले जैसे नहीं रह गये थे। उनकी हवेलियों के पास से गुजरती नहरें-सड़कें भी बेगानी हो गयी थीं। वे यहां वुजू नहीं कर सकते थे। कई दिन तक इन नहरों में पानी लाल रंग का आता रहा था। कई साबुत लाशें और कइयों की टांगे-बाहें बहकर आती रही थीं। फिर इस पानी से वुजू कैसे हो सकता था! वे लोग तो अनजानों को भी इन नहरों में नहाने से मना कर देते थे। असल में हर चीज उलट-पुलट गयी थी और अपनी पुरानी हालत में आने का यत्न कर रही थी। प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी जगह में अड़ने की कोशिश कर रही थी। हर चीज पुनर्स्थापन चाहती थी।

"मुल्क तो तबाह हो गया है।" एक नौजवान जाट ने अपने इर्द-गिर्द बरदारी देखकर अपने बूढ़े पिता से कहा।

"हो तो सचमुच गया है पर, देख! जब लोग अपनी-अपनी जगह पर टिक जाएंगे, सब ठीक हो जाएगा।"

"यह सब तो बातें हैं, टिक ये बेचारे कहां जाएंगे? ये तो रेटी का टुकड़ा उठाकर भी अपने मुँह में नहीं डाल सकते।"

"नहीं रे पगले! ऐसे ही लगता है। यह देखो! घास उगती है ना खेतों में; जब हम हल चलाते हैं तो उसके साथ कोई कसर उठा नहीं रखते। पूरी जड़ से उखाड़कर खेत से बाहर फेंक दी जाती है। परन्तु दस दिन बाद फिर कोई-न-कोई जड़ फूट पड़ती है और एक महीने के बाद ऐसा लगता है जैसे किसी ने खेत की जुताई की ही नहीं।"

असल में इस बूढ़े की बात में कुछ-कुछ सज्जाई दिखाई दे रही थी। जिन लोगों को कुछ जमीन मिल जाती थी वे कुछ टिक-से जाते थे। अस्थायी अलॉट हुए खेत उन्हें धीरज देते थे। अपने नए बाड़ों के पास वे छोटे-छोटे गड्ढे खोदकर इनमें कंडों की आग जलाए रखते थे। जब भी मन करता हुक्के में भरकर इकट्ठे बैठकर पीते थे। धीरे-धीरे इनकी भैंसों का भय भी चला गया। बाड़ों के अन्दर वे पेड़ों की टहनियों से अपनी गर्दन पर खुजली करतीं और कभी-कभी मस्ती में अपने शरीर को बाड़े की दीवारों के साथ घिसने लगती थीं। जब तहसीलदार या कोई और अफसर इन लोगों के गांव में आता तो उनमें से कुछ अपने-आपको पंच जाहिर करने का प्रयत्न करते थे। गांव के साझे दु:ख-तकलीफ तहसीलदार को बताते और सब लोगों का प्रतिनिधित्व करके अपनी लीडरी की जड़ जमाते थे। साधारण-सी बातों से जैसे और लोगों को पीछे बैठाकर 'सिर्फ एक आदमी बोले,' कहकर अफसर को हुक्का-पानी पूछकर वह उसका ध्यान अपनी ओर खींचते थे। यह बातें बताती थीं कि समय की मार ने भी उन्हें, उनके मूल रूप को बदल नहीं था।

इस तरह उजड़ रहे, बस रहे, पाकिस्तान में मैं भारत सरकार की ओर से लेंजान अफसर नियुक्त हुआ। मेरा काम जोर-जबरदस्ती से भगाई गयी स्त्रियों और जबरन मुसलमान बनाए गये परिवारों को वापस हिन्दुस्तान पहुंचाना था। हिंदुस्तानी फौज का एक दस्ता और पाकिस्तान स्पेशल पुलिस के कुछ सिपाही मेरी सहायता के लिए थे।

खोयी हुई अन्य चीजों की तरह लड़कियों को ढूंढ़ने का काम कठिन भी था और आसान थी। कभी-कभी तो कोई लड़की थोड़ी मेहनत से ही मिल जाती थी। और कभी-कभी बहुत ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलती थी। पाकिस्तान पुलिस के सिपाही उनके लौटने में वे इस बरामद करना कहते थे। थोड़ी-बहुत

सहायता कर देते थे परन्तु खुद पता कम ही लगाते थे। फिर भी जब कभी वह साथ चल पड़ते तो काम बहुत आसान हो जाता था।

जिस समय की यह बात है उस समय उस क्षेत्र का थानेदार न केवल मेरे साथ ही गया बल्कि भगायी गयी स्त्री का पता भी उसी ने बताया। उसने यह भी बताया कि वह उसी थाने के एक गांव के नम्बरदार की पुत्रवधू थी। जिस गांव हमें जाना था वह पक्की सड़क से बहुत दूर था। बहुत देर तक हम कच्ची सड़कों और पगडंडियों में भटकते रहे। जब हम गांव पहुँचे तो वहां चौधरी थानेदार के स्वागत के लिए इकट्ठे हो गये। पाकिस्तान में उस समय सरकार का बहुत रोब था। थानेदार ने उस औरत का पता पूछा तो उन चौधरियों ने झट से एक मकान दिखा दिया। यह छोटा-सा मकान बड़ी-सी बाड़ के एक सिरे पर बना हुआ था। थानेदार तथा अन्य लोग बाहर ही रहे। मैं अन्दर चला गया। वह लगभग तीन चारपाइयों का कमरा था। एक तरफ लकड़ी की परछत्ती पर थोड़े-से गिलास-कटोरियां और थालियां रखी हुई थीं। कमरे के एक कोने में कुछ बिस्तर और थोड़-बहुत सामान भी था। वह स्त्री चारपाई पर पड़ी हुई थी। कई दिन से से बुखार था। उसके एक हाथ में पट्टी-बंधी हुई थी। शायद कोई फोड़ा हो गया था। उस समय वह बड़ी शिथिल-सी थी और बहुत ही धीरे-धीरे बोल रही थी। मैं उसके पास चारपाई पर बैठ गया।

"क्या बात है?" मैंने उसका हालचाल पूछने के लिए सीधा सवाल किया।

"बुखार आता है चौथे-पांचवे दिन।"

"यहां तुम्हारे पास कोई औरत नहीं?"

"नहीं, आसपास तो कोई नहीं।"

पहले जो खोयी हुई लड़कियां और स्त्रियां मैंने देखी थीं उनसे इसका इर्द-गिर्द बिलकुल अलग था। उनके चारों ओर स्त्री-पुरुष होते थे। वे किसी-न-किसी की नंजर में, किसी-न-किसी की रखवाली में रहती थीं। मुझ प्रतीत हुआ जैसे इस मकान में वह अकेली ही रहती है, जैसे लोगों ने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया था। उसके गांव और घर के लोग किस तरह खत्म हुए थे, यह मैं पहले ही सुन चुका था। दुबारा उसके मुंह से सुनने का कोई फायदा नहीं था। मेरी दिलचस्पी उसकी वर्तमान हालत में थी।

"यहां तुम्हें कितना समय हो गया है?"

"जिस दिन से गांव उजड़ा मैं उस दिन से यहीं हूं।"

"यह बर्तन और कपड़े तुम्हें किसने दिए हैं?"

"आप तो बिलकुल पागल करते हैं!"

मैं समझ गया वह अकेली नहीं रहती थी, न यहां पड़ा हुआ सामान उसका अपना था। इस सामान, मकान और उसके शरीर का मालिक केवल दिखाई ही नहीं पड़ रहा था।

यह बात लिखने को तो मैं सहज ही लिख गया। उस समय इस जानकारी से मेरे मन को गहरा धक्का लगा। पुलिस तथा लोगों की सहायता से जो सुन्दर खयाल मेरे मन में दुनिया और दुनिया के लोगों के बारे में सारा दिन आते रहते थे वह सब मुझसे दामन छुड़ा गये। मेरा दिमाग कटु वास्तविकताओं के साथ जुड़ा हुआ था। उस कब्जे मकान में किसी की छीनी हुई बीवी मेरे सामने चारपाई पर निढाल पड़ी हुई थी। मेरी नंजर में इनसान पर इनसान के जुल्म की सबसे घिनौनी तस्वीर थी।

कुचली हुई, मसली हुई वह वहां बीमार पड़ी थी। उसकी जात, बिरादरी, गांव-धर्म का कोई साझीदार वहां नहीं था। उसको कभी किसी न यह नहीं बताया कि वह अपने बिछुड़े हुए सगे-सम्बन्धियों को फिर से मिल सकती है। यदि कोई उसे बताता भी तो वह मानने से इनकार कर देती। आखिर इतने बड़े और मंजबूत पाकिस्तान में से उसको कोई किस तरह निकालकर ले जा सकता था! इस बात पर विचार करना ही व्यर्थ था। उसको उस समय वापस ले जाने का कोई सवाल ही नहीं था। वे लोग अब उसको छुपा नहीं सकते थे, हमने उसे देख लिया था और वे लोग जानते थे कि हमने उसे देख लिया है।

"अच्छा, बहन! मैं फिर किसी दिन आऊंगा।" फिर आने से मेरा मतलब उसे वहां से ले जाना था, परन्तु यह बात शायद उसके सपने में भी सम्भव नहीं था।

"तुम अब जा रहे हो? जरा बैठ जाओ। मेरी बात सुनते जाओ।" मैं पास ही चारपाई पर बैठ गया।

"क्या काम है।

"मेरी तुमसे एक विनती है। अगर तुम पूरी करो। एक काम है तुम से।"

"क्या काम है?"

"तुम मेरे सिख भाई हो, मैं भी कभी सिख थी। अब तो मैं मुसलमान हो गयी हूं। इस समय इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है, मैं बहुत दु:खी हूं। तुम मुझे सहारा दो। मेरी एक छोटी ननद है। निगोड़े ग्यारह चक वाले उसे ले गये हैं। उस दिन हमले में सबसे ज्यादा गिनती उन्हीं की थी और वही उसे ले गये हैं। तुम उसे यहां मेरे पास ला दो। सब तुम्हारा लिहाज करते हैं। पुलिसवाले भी तुम्हारी बात मनाते हैं। मेरी ओर से भी उनकी मिन्नत करना। मैं उसकी बड़ी भाभी हूं। मैंने उसे हाथों में पाला है और उसकी मां के समान हूं। वह मेरे पास आएगी तो मैं अपने हाथ से उसका हाथ किसी को दूंगी। मेरी सांझ बढ़ेगी, मेरे सम्बन्ध बढ़ेंगे। मैं किसी को अपना कह सकूंगी।"

उस बूढ़े जाट की बात मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगी। देखो घास होती है ना खेत में, जुताई करते समय तो उसे उखाड़ने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी जाती। सारी जड़ से उखाड़कर खेत से बाहर फेंक देते हैं। परन्तु दस दिन बाद फिर अंकुर निकल आते हैं।

एक सिलसिले का अंत

वीना कस्मचंदाणी

किस पते पर बुक कराएगा मोटर साइकिल जब पता ही नहीं हो किस शहर किस गांव जाना हैं और हां यह जो सामान की लिस्ट बता रहा है ना फिर तो तू और तेरा सामान ही यहां से जा पाएगा बाकि हम सब तो यही रह जाएंगे। तेरी मां मेरी नौकरी के ट्रांसफर के बाद की शिफ्टिंग की बात नहीं कर रही... जब अचानक निकलना पड़ता है तो बस जान बचाने की सूझती है।

मां और बाबा जब भी फुर्सत में होते तब वे दोनों घर परिवार नाते रिश्तेदारों और पास पड़ौस की बातें करते करते कब पुरानी समृतियों में पहुँच जाते उन्हें पता ही नहीं चलता। ऐसे में वो याद करते हर उस पल को जिसने कभी उन्हें करीब से स्पर्श किया था। वे याद करते हर उस शख्स को जो कभी उनके साथ था फिर बिछुड़ गया। वे याद करते उस घर को, खेत-खलिहान को, गली-मोहल्ले को, बाजार और उन रास्तों को जहां पर उन्होंने अपने आत्मीय क्षण बिताए थे। ऐसे समय में वे बहुत सारी यादों को एक साथ अपने भीतर समेट लेना चाहते थे।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ। लता और लाल, मां-बाबा के साथ अपने घर के लॉन में बैठ हल्की हल्की रिमझिम फुहार का आनंद ले रहे थे। बात शुरू हुई पौधों से और पहँच गयी यादों की घनी जड़ों में। बाबा ने कहा बारिश का मौसम है तो क्यों न गमलों से निकाल कर कुछ पौधे लॉन के किनारे की जमीन पर लगा लिए जाएं। जमीन से जुड़ कर पौधे सहज ही फैलेंगे, बढ़ेंगे, फलेंगें और फूलेंगे भी।

... सच है वे भी अपनी जमीन पर रह रहे होते तो... अनायास मां बुदबुदाने लगीं मानों अपने आप से बात कर रहीं हों।

तो क्या होता... खेत में हल जोत रही होती... कुँए से पानी भर रही होती... चक्की चला रही होती... मक्खन बिलो रही होती... यह कहते कहते बाबा ठठा कर हंस पड़े। हंसने के मामले में बेहद कृपण बाबा को यूं खिलखिलाते देख बहुत सुकून मिलता। लगातार संघर्षों की लम्बी कठिन यात्रा से गुजरने के बाद बाबा बहुत थोड़ी-सी हंसी बचा पाए थे जिसे वो सयंम से यदा कदा ही खर्च करते। बाबा थोड़ा-सा भी हंसते तो मां की खनकदार हंसी भी उनका साथ देती।

आठ-नौ साल की छोटी उम्र में शादी हो जाने के कारण अबोध गंगा से पीहर छूटा और एक-दो साल में ही देश के विभाजन की त्रासदी के साथ अपना जमा-जमाया घर-बार और नाते-रिश्तेदारों का साथ छूटा। शादी से पहले अम्मा का नाम रूक्मणी हिंगोराणी था जो रिती रिवाजों के अनुसार शादी के समय बदलकर गंगा गोदवाणी हो गया। हां राशन कार्ड में मां का नाम गंगा ही तो था पर उनको इस नाम

से कभी पुकारा नहीं गया। शादी के बाद से उनको मोहन की बहू और लता के जन्म लेने के बाद लता की मां के सम्बोधन से ही जाना गया। बाबा का नाम मोहन गोदवाणी था और वे सदा घर और बाहर इसी नाम से जाने गए। लता के जन्म लेने से पहले बाबा मां को क्या कह कर पुकारते थे नहीं पता पर जब से लता ने होश संभाला है उन्हें लता की मां कहते ही सुना है।

लगातार चलती हल्की हल्की बारिश की रफ्तार के साथ ताल में ताल मिलाती बातों का सिलसिला भी अभी चल रहा था। लाल ने मां के दुपट्टे को खींचते हुए कहा मां बताओ न जब आपको पता चला अपना घर, अपना खेत, पूरा सामान, अपना सब कुछ छोड कर कराची से तुरंत निकल पड़ना है तो...

लाल का वाक्य पूरा होने से पहले ही चाबी भरे खिलौने की तरह मां बोलने लगीं बर्तन-भांडे, गाय-भैंस सब कुछ छोड़कर रातों रात बैलगाड़ियों पर लदे फदे हम वहां से निकल भागे। मैंने एक के ऊपर एक-एक कस्के चार-पांच कुर्ते पहने ताकि जितने कपड़े अपने साथ ले जाए जा सकें ले जाएं। साथ में एक दो पोटली में थोड़ा बहुत खाने-पीने का जो सामान डाला जा सकता था बांध हम निकल पड़े थे अनजान दुर्गम सफर पर। तुम्हारी नानी से तो में दुबारा मिल ही नहीं पाई। उनके न रहने की खबर भी महीनों बाद पता चली। उनके पांव पर नासूर हो गया था। यह कहते कहते मां की आँखे छलछला पड़ीं। लाल को खुद पर गुस्सा आया, आज उसने फिर मां को रुला दिया। लता ने मां के हाथ पर अपना हाथ रखा तो वे अपने आपको संभालते हुए फिर बोलने लगीं...

तब ये मुए मोबाइल भी तो नहीं होते थे जो पल-पल की जानकारी मिलती रहती और शायद मैं अपनी मां से मिल भी पाती। पर पता लग भी जाता तो इतनी आसानी से मिल सकती थी क्या? दो-दो दिन लग जाते थे एक जगह से दूसरी जगह तक जाने में। तेरे नाना बताते थे अंतिम समय तक उनके मुंह पर गंगू-गंगू ही था। वे गंगू बोलती थी मुझको, यह कहते हुए मां ने दुपट्टे से अपनी आंखे पोंछ ली।

मां ने वातावरण को थोड़ा हल्का बनाते हुए लाल से पूछा अच्छा तू यह बता तुझे कोई कह दे कि आज ही घर छोड़कर हमेशा के लिए कहीं अनजानी जगह जाना पड़ेगा तो क्या करेगा?

मैं अपने सारे पैसे पेटीएम में ट्रांसफर कर दूंगा, अपने सारे जरूरी डॉक्यूमेंट्स स्केन कर मेल में सेव कर लूंगा... और... और... हाँ अपने कपड़ें अटेची में डाल लूँगा... वेसे आपकी तरह मैं भी एक के ऊपर एक कस्के बहुत सारी शर्ट पहन सकता हूँ ना!

और हाँ अपनी किताबें भी... और... और कहते लाल अचानक बोला अपनी ब्रांड न्यू मोटर साइकिल को कैसे छोडूंगा... बुक करवा दूंगा... अभी पिछले महीने ही तो बाबा ने कितनी हार मनुहार

करने के बाद लाल को दिलवाई थी यह मोटर साइकिल... यह कहते कहते लाल ने अपना सारा सामान गिना दिया।

अचानक लाल को वो तकिया भी याद आ गया जिसको सिरहाने लगाए बिना उसे नींद नहीं आती।

बाबा मुस्कराते हुए बोले किस पते पर बुक कराएगा मोटर साइकिल जब पता ही नहीं हो किस शहर किस गांव जाना हैं और हां यह जो सामान की लिस्ट बता रहा है ना फिर तो तू और तेरा सामान ही यहां से जा पाएगा बाकि हम सब तो यही रह जाएंगे। तेरी मां मेरी नौकरी के ट्रांसफर के बाद की शिफ्टिंग की बात नहीं कर रही... जब अचानक निकलना पड़ता है तो बस जान बचाने की सूझती है।

इस बीच लता बाबा की बात को अनसुना करते हुए बोल पड़ी... मैं तो अपनी चूड़ियों वाला बॉक्स लेकर चल दूंगी। लता को चूड़ियों का बहुत शौक है। पता नहीं कितनी चूड़ियां हैं उसके पास। कभी कोई इधर-उधर हो जाए या टूट जाए तो पूरा घर सर पर उठा लेती है।

अपनी लिस्ट को आगे बढ़ाते हुए लता बोली पर कपड़े तो मुझे भी साथ ले जाने होंगे। अपनी बार्बी डॉल को तो वो किसी भी हालत में नहीं छोड़ेगी।

अब जान पर आन पड़ती है तो न चूड़ियां याद आती हैं और न मोटर साइकिल... .बस लगता है किसी तरह जान बच जाए। जान है तो जहान है। हम सब अपनी जमीन, घर, दुकान सब कुछ छोड़ निकल भागे और बिखर गए इधर-उधर और जुदा हो गए। किसी को किसी का कुछ पता नही। सबके प्राण अपने अपनों में अटके पड़े थे, कहां होंगे किस हाल में होंगे। बच्चे-बूढ़े भूख से बिलख रहे थे। पीने के लिए पानी नहीं था। सब सहमे हुए थे। मन में हाहाकार मचा था। सबकी आखों में डर था। दिल में तमाम तरह की आशंकाएं थी।

उनमें से कुछ अपने परिवार वालों के साथ यहां अनजानी मंजिल तक पहुंच पाए तो कुछ का साथ अधूरे सफर में छूट गया। मेरे मायके वाले सक्खर जिले के शेरकोट गांव में और हम औरंगाबाद में थे। किसी को किसी की कुछ खबर नहीं। जिसको जब मौका मिला हम सब ऊपर वाले पर छोड़ अपनी जान बचा बैलगाड़ियों पर लदे हुए निकल पड़े कराची के लिए। कराची से पानी वाले जहाज से बम्बई पहुंचे। हम वहां कल्याण कैम्प में पहुंच गये। कोई होशंगाबाद तो कोई कानपुर तो कोई जयपुर के और दूसरे शहरों में बने शरणार्थी कैम्पों में पहुंच गया। जिसको जहां शरण मिली वहां टिक गया। शरणार्थी कैम्प में गुजारे गये अपने कठिन संघर्ष भरे दिनों को याद करते करते मां की आंखे एक बार फिर भीग गई।

लता ने बात का रुख बदलते हुए मां को मीठी यादों की राह पर ले जाते हुए कहा अपनी शादी का किस्सा सुनाओ ना...

कितनी बार तो सुना चुकी हूँ तुमको। मां ने शादी की बात सुनते ही बाबा को दुलार से निहार कर शर्माते हुए ऐसे देखा मानों नई नवेली दुल्हन अभी डोली से उतर कर आई हो।

तुम्हे पता तो है जब मां आठ-नौ साल की ही थी तो मां बाबा की शादी हो गयी थी। यह कहते हुए लाल ने लता को चिड़ाया दीदी तुम तो सोलह साल की हो गई हो अब तुम्हारी भी शादी करवा देंगे। लता बोली करवा कर देख। अब तो अठारह साल से पहले लड़की का विवाह करवाने पर जेल की हवा खानी पड़ जाती है।

लड़की है लता। बहुत अच्छा लगता है उसे मीठी-मीठी और कोमल-कोमल बातें सुनना।

इस बीच मां ने कई बार सुनाया जा चुका अपनी शादी का किस्सा एक बार फिर शुरू कर दिया। सच तो यह था उनको खुद भी उन स्मृतियों में लौट जाना अच्छा लगता था... तेरी मौसी की बारात में आए थे तेरे दादा और बाबा। घर के पिछवाड़े में खेल रहे थे हम बच्चे। पता नहीं कब तेरे दादा ने मुझे देखा और मांग लिया तेरे नाना से मुझको तेरे बाबा के लिए। बातों बातों में मेरी शादी तय हो गयी और लगे हाथ मौसी के साथ-साथ मेरा ब्याह भी कर दिया गया। अब मेरी बहिन मेरी जेठानी भी थी। बारात तीन दिन ज्यादा रूकी। सात दिन के लिए आई बारात दस दिन बाद एक की जगह दो दुल्हनों के साथ लौटी। मैं बहुत खुश थी। नए चमकीले कपड़े और गहनों के साथ मुहं दिखाई के नेगचार में खूब सारे पाई-टके मिले अरे हाँ तुम्हें क्या पता पाई-टके... एक पाई में तब खूब सारे चने, मिठाई आ जाते थे... मजा ही आ गया... मैं तो यही सोच कर आनंदित थी कि इतने पैसों से खूब सारे मीठे गुड के सेव और 'नकुल' आ जाएंगे। नकुल पता है न तुम्हे चाशनी चढ़ी मूंगफलियां, तब च्यूंगम और चाकलेट नहीं होते थे...

मां ने कुछ देर के लिए बोलने को विराम दिया मानों नकुल का स्वाद ले रही हों। फिर कुछ सोचते हुए बोलीं मुझे लम्बे घूंघट में देख तेरे दादा ने कहा तेरा चेहरा देख कर ही तो तुझे पसंद किया था फिर उसे क्यों छुपा रही है। शर्म तो आँखों की होती है, कहते हुए दादा जी ने मेरा घूंघट उठा दिया। तेरी दादी जी उन से खूब गुस्सा हुई। बहुत दिनों तक दोनों में बातचीत भी बंद रही। नाराज हो कर तेरे दादा के बड़े भाई ने तो हमारे घर आना ही बंद कर दिया था। मगर तेरे दादा जी ने मुझे फिर कभी घूंघट निकालने नहीं दिया। यह उस समय की बात है जब अपनी पतली झीनी चुन्नी के ऊपर एक चादरनुमा मोटा कपड़ा डालकर ही औरतें घर से निकलतीं थीं।

दो परतों वाले घूंघट की जगह बिना घूंघट वाली बहू गांव में चर्चा का विषय बन गई थी। सब पीठ पीछे निंदा करते। उड़ते-उड़ते बात हम तक भी पहुंच जाती। सब कहते कॉमरेड प्रहलाद ने लाज शर्म बेच खाई। एक बार तो जात बिरादरी से बाहर तक करने की चर्चा भी सुनाई दी। मुझे अपने आस पास देख गांव के बढे बूढ़े अपना मुहं दूसरी तरफ घुमा लेते। उन्होंने अपनी बहू बेटियों के माध्यम से मेरा

अघोषित बहिष्कार तो करवा ही दिया था। मैं दुखी होती तो दादाजी मुझे समझाते अपनी ताकत लिखने पढ़ने में लगाओ। उन्होंने ही मुझे थोड़ा बहुत लिखना पढ़ना सिखाया और इस काबिल बनाया कि मैं अनपढ़ पढ़ाई के महत्व को समझ पाई।

काश बेफिजूल बातों में अपनी ताकत खराब करने वाले एकजुट होकर अंग्रेजों का मुकाबला करने में इतनी शक्ति लगा देते तो क्या मजाल कि हम इतने लम्बे समय तक उनके गुलाम रहते... शादी और घूंघट की बात करते-करते मां के भीतर का कॉमरेड बोलने लगा था। दादा जी ने उनके व्यक्तित्व को बहुत मेहनत और अपनेपन से गढ़ा था। दादा जी ने ही मां को सिखाया था कि इंसानियत और सद्भावना से बड़ा कोई धर्म नहीं होता। कोई छोटा बड़ा नहीं होता। उनकी ही सीख थी दुनिया को सुन्दर और सुखी बनाने के लिए जो कुछ कर सको, करो।

मां जब सिंध की और सिंध से विस्थापित होने की बात करतीं तो बिना रुके बोलतीं चली जाती। मां बाबा के जीवन और संघर्षशील व्यक्तित्व की तारीफ करने में कोई कसर नहीं छोड़ती सो उस दिन भी बोलीं... यहाँ आने के बाद सिर ढकने के लिए छत, पेट भरने के लिए दो जून रोटी के जुगाड़ में क्या क्या नहीं किया तेरे बाबा ने...

कभी गोलियां बेचीं तो कभी चने, कभी सब्जी की दुकान पर काम किया तो कभी दवा की फेक्ट्री में जब विस्थापित सिंधियों को शरणार्थी कहा गया तो तेरे बाबा को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। वे अपने आपको पुरुषार्थी कहलवाना पसंद करते थे। सरकार की तरफ से हमें मदद के रूप में कल्याण में थोड़ी जमीन और कुछ आर्थिक मदद मिली थी। मैं तेरी दादी और चाचा के साथ कल्याण मे रही। तुम्हारे बाबा रोजी रोटी के लिए कभी मुम्बई तो कभी बड़ोदा, कभी ग्वालियर तो कभी दिल्ली जहां काम मिला वहां चल दिए। गुजारे लायक कमा पाते थे तेरे बाबा, बस चला रहे थे किसी तरह जीवन की गाड़ी।

लाल ने मां से कहा वो खीर वाली बात भी बताओ हमको... लाल को भी खीर बहुत पसंद है। मां बनाती ही इतनी अच्छी हैं।

हां हां बता रही हूं... तेरे चाचा की हमेशा फरमाइश रहती थी खीर की। एक दिन कहा भाभी इस बार राखी पर खीर बनाना, बहुत दिनों से खीर नही खाई। पाई पाई जोड़ी जिससे खीर के लिए दूध, चावल और मेवे खरीद पाते। राखी वाले दिन मैंने खूब मन लगा कर खीर बनाई। पूरे घर में खीर की खुशबू तैर रही थी। तेरे चाचा ने अपने दो दोस्तों को भी बुलाया था। वो उनके साथ बाहर गली में खड़े गप्पे मारने लगे। तेरी दादी पड़ौस में चली गई थीं। मैं नहाने के लिए घर के पिछवाड़े टाल की आड़ में चली गयी। पीछे से बिल्ली आई और सब चट कर गयी। उस दिन मैं खूब फूट-फूट कर रोई। तेरे चाचा दोस्तों के साथ जब चहकते हुए घर में घुसे तो एक बार तो मेरी तो हिम्मत ही नहीं हुई उनको बताने की।

बताना तो था ही। चाचा चुपचाप दोस्तों के साथ घर से बाहर निकल गए। हमने उस दिन गुड़-चने खाकर काम चलाया।

आज मां ने अपनी कभी खीर न खाने का भेद भी हमे बताया। मां अपनी धुन में बोल रहीं थीं। खीर वाली इस घटना के कुछ ही दिन बाद तेरे चाचा की तबीयत अचानक इतनी ज्यादा खराब हुई कि वे हमे हमेशा के लिए छोड गए। तेरे चाचा बार-बार खीर खाने की जिद करते मगर पैसों की कमी के कारण मैं तेरे चाचा के लिए दुबारा खीर नहीं बना सकी। इसका दुःख मुझे आज भी सालता है। तेरे बाबा भी उन दिनों ग्वालियर थे। मैं इधर-उधर से उधार ले जैसे तैसे दवाइयों का इंतजाम कर पा रही थी। वो दिन है और आज का दिन खीर का नाम लेते ही मुझे तेरे चाचा का चेहरा नजर आने लगता है और मुझसे खीर खाई नहीं जाती। मुझे क्या पता था तेरे चाचा इस तरह अचानक हमें छोड़ जाएँगे वरना मैं किसी भी तरह बिना खीर खाए उसको यूं नहीं जाने देती... यह कहते कहते मां का गला रुंध गया। बाबा ने भी चुपके से अपनी आँखे पोंछ आँसूओं को लुढ़कने से रोक लिया।

पता नहीं कितनी बार सुन चुके थे यह सब मगर जितनी बार भी सुनते उसमें कोई न कोई नई बात जरूर जुड़ जाती थी। आज चाचा के बारे में और कुछ जानने का भी करने का मन कर रहा था लाल का मगर वो मां बाबा को और दुखी नहीं करना चाहता था।

लता तो अक्सर घर आई सहेलियों को मां के मुंह से सिंध से यहां आने के बाद शरणार्थी केम्प में बिताए हुए दिनों के हृदयस्पर्शी मार्मिक संस्मरण सुनवाती। मां उनको सिंध से अपना घर छोड़कर निकलने से लेकर कल्याण तक पहुंचने की पूरी कहानी ऐसे बताती कि पूरे मार्मिक चित्र जीवंत हो सामने घूम जाते। वे यह जरूर कहतीं कल्याण के शरणार्थी कैम्प में गुजारे हुए दिन किसी दुश्मन को भी देखने को नहीं मिले। शुरू में कुछ दिन खाने के नाम पर थोड़ी खिचड़ी मिलती जिससे न पेट भरता न मन। बाद में कच्चा राशन मिलने लगा जो पूरा नहीं पड़ता। आधा पेट भरता तो आधा खाली रहता। माऐं छोटे बच्चों को दूध में पानी मिलाकर पिलाती। बीमारों को पूरी दवाईयाँ नहीं मिलती। पीने को साफ पानी नहीं। शौच के लिए भी कैम्प में सुविधा नहीं थी। सामने समुन्द्र किनारे जाते थे। दो-दो दिन तक नहा नही पाते थे। साफ सफाई नहीं होने के कारण ज्यादातर शरणार्थी खुजली की बीमारी से परेशान थे। हैजा फैल गया था। तेरे दादाजी को भी हैजा अपने साथ ले गया। वे जीवन भर देश की आजादी के लिए लड़ते रहे पर अपनी जिंदगी की लड़ाई झटके से हार गए... यह बताते-बताते लम्बी सांस लेकर कहतीं शरणार्थी कैम्प में गुजारे दिनों ने ही हमको फौलाद-सा मजबूत बना दिया है शायद। इसी कारण हम कहीं भी किसी भी हालात के अनुरूप अपने-आपको ढाल लेते है।

इस दौरान लता अपनी सहेलियों के चेहरे पर आते जाते भावों को देखती और ऐसे गर्वित होती जैसे सारी मुसीबतें उसने भी पार की हों। वेसे लता जानती है उसमें न मुसीबतें सहन करने की शक्ति है न इतना धैर्य वह तो सीधी सपाट बिना किसी अवरोध के जिंदगी जीने की आदी है। मां और बाबा ने अपने संघर्षो की बातें उनको सुनाई जरूर हैं पर दोनों उनकी छोटी-छोटी समस्याओं में हमेशा ढाल बन खड़े हो जातें थे। लता तो अब भी अपनी छोटी-छोटी परेशानियों के समाधान के लिए मां-बाबा की सलाह और मदद लिए बिना कुछ नहीं करती।

लता को आराम कुर्सी पर बैठे बैठे कब नींद आ गयी थी उसे पता ही नहीं चला। आज सुबह ही लता की मां से फोन पर लम्बी बात हुई थी शायद इसलिए उसके अचेतन मन में सारी स्मृतियां जीवित हो उठीं थी।

मां सिर्फ सोलह साल की थीं जब लता ने जन्म लिया था और ठीक दो साल बाद लाल ने। चालीस वर्ष की लता का अब दिल्ली में अपना एक घर है जिसमें अपने पति और दो बच्चो के साथ रहती है। इस दौरान लाल भी इंजीनियर बन मां बाबा की अनिच्छा के बावजूद इंग्लैण्ड जा बसा। उसने वहीं शादी की और वहीं का हो कर रह गया। अब तो उसके दो प्यारे बच्चे भी हैं। मां और बाबा आज भी पुराने घर में ही रहते हैं। लाल उनको लगातार इंग्लैण्ड आकर अपने साथ रहने को कह रहा है।

एक बार जबरन सिंध छूटा सो छूटा मगर अपनी अच्छा से अपनी जड़ों से फिर कैसे कटें इसलिए बाबा हर बार लाल के पास जाकर रहने की बात टाल जाते हैं। वो यही कहते अब इस उम्र में इंग्लैण्ड के नए माहौल में कैसे एडजस्ट कर पाएंगें। वे मजाक करते भई जिन अंग्रेजो से लड़ाई लड़ी उनके यहां ही जाकर बसना बड़ा गड़बड़ झाला होगा यह तो... फिर इंग्लैण्ड में रहने के तौर तरीके, छुरी कांटे से खाना और अंग्रेजी में गिटपिट करना... नहीं भाई अब ये हमारे बस का नहीं।

लता जानती है यह सब तो टालने की बात है। मां बाबा को अपने घर नाते रिश्तेदारों, मित्रों और पास-पडौस से बहुत लगाव है और अब वे इनसे दूर रहने का सोच भी नहीं सकते। उनकी जड़े अब मजबूती से यहां जम गयी हैं। सिंध छूटने का दर्द वे जिंदगी भर अपने सीने में समेटे रहेंगे। तब तो उन्हें मजबूरी में अपनी जमीन से अलग होना पड़ा। इसके अलावा और कोई चारा भी तो नहीं था। जो सिंध अब अपने वतन का, हिन्दुस्तान का हिस्सा ही नहीं तो वहां वो कैसे रहते। बरसों से यहां रहते रहते वे अब यहां की आबोहवा मिट्टी पानी में घुलमिल गए हैं। यहां के लोग अब अपने हो गए हैं। उनके सुख दुःख के भागीदार बन गए हैं। उनका हिस्सा बन गए हैं। ऐसे में फिर यहां से उखड कर इंग्लैण्ड जा कर बसना उन्हें एक और विस्थापन की त्रासदी सा लगता है। इस दुःस्वपन से वे भयभीत हो जाते हैं। वे फिर नहीं

लौटना चाहते जलावतनी की स्मृतियों में। इस मनःस्थिति को लाल नहीं समझता और न ही समझना चाहता है।

कल रात को लाल ने एक बार फिर फोन पर लता को मां बाबा को समझाने के लिए कहा। उसने कहा जवाब जानने के लिए वह फिर एक दो दिन में फोन करेगा। सच तो यह था कि वो कभी साहस ही नहीं कर पाई इस सम्बन्ध में मां-बाबा से बात करने के लिए, मगर लाल को जवाब तो देना ही पड़ेगा।

दूसरे दिन उसने बाबा को फोन पर कहा आप तो खुद कहते हो आगे की और देखना चाहिए तभी हम तरक्की कर पाएंगे, अगर पीछे मुड़कर देखते रहे तो बहुत पीछे रह जाएंगे।

हाँ, यह तो है पर क्या कहना चाह रही है तू?... बाबा ने सहज भाव से पूछा।

बाबा... लता ने संकोच से धीमे से कहा... लाल चाहता है आप दोनों अब उसके पास रहने आ ही जाओ। वो आप दोनों को बहुत मिस करता है। आपका मन लग जाएगा बच्चों के साथ। वहां सारी सुख सुविधाऐं है। अब इस उम्र में आप अकेले क्यों रहे? मां को भी पूरी गृहस्थी संभालनी पड़ती है। मां ने बाबा के हाथ से फोन छीनकर लता को कहा तू मेरी छोड... अपनी गृहस्थी संभालने में मुझे काहे की दिक्कत... दिक्कत तो तब होगी जब यह सब छूट जाएगा...

देख साफ कहूं... तू कर देना लाल को... जो तुझे हिचक हो तो मेरी ही बात करवा देना, तेरे बाबा तो कह नहीं पाएंगे... एक बात साफ कह दूं... हम जहां पैदा हुए, खेले-कूदे, पले-बढ़े, वह जमीन हमें छोडनी पडी... हमारी मजबूरी थी... हमारा बस नही था... जो होनी को मंजूर था हुआ... वह एक सांस में बोले जा रहीं थीं..

उनकी आवाज की खनक... गायब थी अब... जलावतनी का दर्द पूरी शिद्दत से उनकी आवाज से अभिव्यक्त हो रहा था। पर यह कहते उनकी आवाज में दृढ़ता थी जो उनके चरित्र का हमेशा हिस्सा रही थी... बुरी से बुरी स्थिति में भी वो घर के बाकि लोगों के लिए सहारा बन साथ खड़ी रहतीं थीं।

लता को मालूम है बाबा चुपचाप हमेशा की तरह एक टक मां को देखे जा रहे होंगें। मां कहती थी... "ये" जो कुछ बोलते नहीं पर यूं देखते रहते हैं तो बड़ी हिम्मत रहती है। मुझे पता पड़ जाता है वे मेरे साथ हैं, मुझसे सहमत हैं पर जब मुहं फेर लेते हैं तो मैं समझ जाती हूं कि वे मेरी राय से एकमत नहीं हैं। तब मैं इनको समझने की कोशिश करती हूं। मानों यह बताते हुए अपनी गृहस्थी की सफलता का रहस्य हमें समझाती हों।

तू लाल को कहदे साफ साफ अब हमें वहां बसने को दुबारा नहीं कहे। यहां वैसी सुविधाएं बेशक न हो मगर यहां की मिट्टी हमारे बदन का हिस्सा बन गयी है। अब हमारी सांस में इसकी खुशबू बस गयी

है। हम इसके बिना अब नहीं जी पाएंगे। यहां से कहीं जाना नीयती के नहीं हमारे हाथ में है तो हम अब यह जमीन छोडकर क्यों जाएं। अब यहीं जीएंगे और यही मरेंगे।

... नहीं... नहीं... हमें कही नहीं जाना... अचानक जैसे बरसों से दबी रुलाई फूट कर निकल आई... उनके पत्थर से मजबूत सीने को भेद कर निर्मल जल की मुक्त धारा सी। मां को लता ने पहली बार इस तरह फूट फूट कर रोते देखा था। लता ने महसूस किया बाबा अब भी चुपचाप मां को एक टक देखे जा रहे होंगे।

— **वीना करमचंदाणी**, *सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग,राजस्थान सरकार में सहायक निदेशक*

[लगभग 30 वर्षों से सिंधी एवं हिंदी में कविता,कहानी, लघु कथा, व्यंग्य आदि का दोनों भाषाओं के अनेक राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय पत्र पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन। दूरदर्शन जयपुर पर लगभग 15 वर्षों तक रोजगार समाचार वाचन।

संपर्क: 9 /913 मालवीय नगर, जयपुर 302017 karamchandani.veena@gmail.com]

https://www.shabdankan.com/2020/03/bharat-vibhajan-ka-dard-veena-Karamchandani.html

मलबे का मालिक

मोहन राकेश

पूरे साढ़े सात साल के बाद लाहौर से अमृतसर आये थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आंखें इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक खास आकर्षण का केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे-- देख, फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकाने पहले से कितनी कम रही गयी हैं उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारन की भट्ठी थी, जहां अब वह पान वाला बैठा है यह नमक मण्डी देख लो, खान साहब! यहां की एक-एक ललाइन वह नमकीन होती है कि बस।

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़िया और लाल तुर्की टोपियां दिखायी दे रही थीं। लाहौर से आये हुए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी, जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर छोड़कर जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता-- वल्लाह, कटड़ा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया। क्या इस तरफ के सबके सब मकान जल गये? यहां हकीम आसिफ अली की दुकान थी न? अब यहां एक मोची ने कब्जा कर रखा है।

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनायी दे जाते-- वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरूद्वारा नहीं बना दिया?

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर शंकित-से रास्ते हट जाते थे, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते थे। ज्यादातर वे आगंतुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते थे कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहालमी गेट का बाजार पूरा नया बना है? कृष्ण नगर में तो कोई खास तब्दीली नहीं आयी? वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है? कहते हैं पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है? इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था कि लाहौर एक शहर नहीं, हजारों

लोगों का सगा -संबंधी है, जिसके हालात जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आए हुए लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे, जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को खामख्वह खुशी का अनुभव होता था।

बाजार बांसा अमृतसर का एक उपेक्षित-सा बाजार है, जो विभाजन से पहले गरीब मुसलमानों की बस्ती थी। वहां ज्यादातर बांस और शहतीरों की ही दुकानें थीं, जो सबकी सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाजार बांसां की आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी, जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अन्देशा पैदा हो गया था। बाजार बांसा के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ तो गयी, पर उसमें मुसलमानों के एक एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छह-छह घर जलकर राख हो गये। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें तो फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच-बीच में मलबे के ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाजार बांसां में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी, क्योंकि उस बाजार के ज्यादातर वाशिंदे तो अपने मकानों के साथ ही-शहीद हो गये थे और जो बचकर चले गये थे, उनमें शायद लौटकर आने की हिम्मत बाकी नहीं रही थी। सिर्फ़ एक दुबला-पतला बूढ़ा मुसलमान ही उस वीरान बाज़ार में आया और वहाँ की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूल-भुलैया में पड़ गया। बांयें हाथ को जाने वाली गली के पास पहुँचकर उसके कदम अन्दर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहां बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे निश्चय नहीं हुआ कि वह वही गली है या नहीं, जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बज्जे कीड़ी-काड़ा खेल रहे थे और कुछ अंतर पर दो स्त्रियां ऊंची आवाज में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियां दे रही थीं।

-- सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं! -बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामें से बाहर को निकल रहे थे और घुटनों के थोड़ा ऊपर ही उसकी शेरवानी में तीन-चार पैबंद लगे थे। गली में एक बज्जा रोता हुआ बाहर को आ रहा था। उसने उसे पुचकार कर पुकारा-- इधर आ, बेटे, आ इधर! देख तुझे चिज्जली देंगे, आ। -और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने लगा। बज्जा क्षणभर के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसने होंठ बिसूर लिये और रोने लगा। एक सोलह-सत्रह बरस की लड़की गली के अंदर से दौड़ती हुई आयी और बज्जे की बांह पकड़कर उसे घसीटती हुई गली में ले चली। बज्जा रोने के साथ-साथ अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे बांहों में उठा कर अपने साथ चिपका लिया और उसका मुंह चूमती हुई बोली-- चुप कर, मेरा वीर! रोएगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़ कर ले जाएगा, मैं वारी जाऊं; चुप कर!

बुड्ढे मुसलमान ने बज्जे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर उसने वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने जरा-जरा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और औपी फिर से सिर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊंची-ऊंची शहतीरियां रखी रहती थीं, वहां अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामाने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़ होकर बैठी थीं। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते हुए जर्रों को देखता रहा। फिर उसके मुंह से निकला-- या मालिक!

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता हुआ गली की ओर आया ओर बुड्ढे को वहां खड़े देखकर उसने रूककर पूछा-- कहिए मियां जी, यहां किस तरह खड़े हैं?

बुड्ढे मुसलमान की छाती और बांहों में हल्की-सी कंपकंपी हुई और उसने होंठों पर जबान फेरकर नवयुवक को ध्यान से देखते हुए पूछा-- बेटे, तेरा नाम मनोरी तो नहीं है?

नवयुवक ने चाबियों का गुच्छा हिलाना बंद करके मुट्ठी में ले लिया और आश्चर्य के साथ पूछा-- आपको मेरा नाम कैसे पता है?

-- साढ़े सात साल पहले तू बेटे, इतना-सा था। -यह कहकर बुड्ढे ने मुस्कराने की कोशिश की।

-- आप आज पाकिस्तान से आए है? -मनोरी ने पूछा।

-- हां, मगर पहले हम इसी गली में रहते थे, -बुड्ढे ने कहा-- मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छह महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनाया था।

-- ओ, गनी मियां। -मनोरी ने पहचान कर कहा।

-- हां बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियां हूं। चिराग और उसके बीवी-बज्जे तो नहीं मिल सकते, मगर मैंने कहा कि एक बार मकान की सूरत ही देख लूं। और उसने टोपी उतार कर सिर पर हाथ फेरते हुए आंसुओं को बहने से रोक लिया।

-- आप तो शायद काफी पहले ही यहां से चले गये थे? -मनोरी ने स्वर में संवेदना लाकर कहा।

-- हां, बेटे, मेरी बदबख्ती थी कि पहले अकेला निकलकर चला गया। यहां रहता, तो उनके साथ मैं भी...। और कहते-कहते उसे अहसास हो आया कि उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। उसने बात मुंह में रोक ली, मगर आंख में आए हुए आँसुओं को बह जाने दिया।

-- छोडिए, गनी साहब, अब बीती बातों को सोचने में क्या रखा है? -मनोरी ने गनी की बांह पकड़ कर कहा-- आइए, आपको आपका घर दिखा दूं?

गली में खबर इस रूप में फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है, जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था उसकी बहन उसे पकड़ कर घसीट लायी, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर पाते ही जो स्त्रियां गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे अपने-अपने पीढ़े उठा कर घरों के अन्दर चली गयीं। गली में खेलते हुए बच्चों को भी उन स्त्रियों ने पुकार-पुकारकर घरों में बुला लिया। मनोरी जब गनी को लेकर गली में आया, तो गली में एक फेरीवाला रह गया था या कुएँ के साथ उगे हुए पीपल के नीचे रूखा पहलवान बिखरकर सोया दिखायी दे रहा था। घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से अलबत्ता कई चेहरे झाँक रहे थे। गनी को गली में आते देखकर उनमें हल्की-हल्की चेमेगोइयां शुरू हो गयीं। दाढ़ी के सब बाली सफेद हो जाने के बावजूद लोगों ने चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचान लिया था।

-- वह आपका मकान था। -मनोरी ने दूर से एक मलबे की ओर संकेत किया। गनी पल-भर के लिए ठिठकर फटी-फटी आंखों से उसकी ओर देखता रह गया। चिराग और उसके बीवी -बच्चों की मौत को वह काफी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था, मगर अपने नए मकान को इस रूप में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से ज्यादा खुश्क हो गयी और घुटने भी और ज्यादा काँपने लगे।

-- वह मलबा? -उसने अविश्वास के स्वर में पूछा।

मनोरी ने उसके चेहरे का बदला हुआ रंग देखा। उसने उसकी बांह को और सहारा देकर ठहरे हुए स्वर में उत्तर दिया-- आपका मकान उन्हीं दिनों जल गया था।

गनी छड़ी का सहारा लेता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी, जिसमें जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें फँसी थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से न जाने कब का निकाल लिया गया था। केवल जले हुए दरवाजे की चौखट न जाने कैसे बची रह गई थी, जो मलबे में से बाहर को निकली हुई थी । पीछे की ओर दो जली हुई अलमारियां और बाकी थीं, जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की-हल्की तह उभर आयी थी । मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा-- यह रह गया है यह?

और जैसे उसके घुटने जवाब दे गये और वह जली हुई चौखट को पकड़ कर बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा लगा और उसके मुँह से बिलखने की-सी आवाज़ निकली-- हाए! ओए, चिरागदीना!

जले हुए किवाड़ की चौखट साढ़े सात साल मलबे में से सिर निकाले खड़ी तो रही थी, मगर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर बिखर गये। कुछ रेशे

गनी की टोपी और बालों पर आ गिरे। लकड़ी के रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा, जो गनी के पैर से छह-आठ इंच दूर नाली के साथ बनी ईंटों की पटरी पर सरसराने लगा। वह अपने लिए सूराख ढूंढता हुआ जरा-सा सिर उठाता, मगर दो- एक बार सिर पटककर और निराश होकर दूसरी ओर को मुड़ जाता।

खिड़कियों में से झाँकने वाले चेहरों की संख्या पहले से कहीं बढ़ गयी थी। उनमें चेमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ न कुछ जरूर होगा चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की सारी घटना आज खुल जायगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी की सारी कहानी सुना देगा कि शाम के वक्त चिराग ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया कि वह एक मिनट आकर एक जरूरी बात सुन जाय। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। हिंदुओं पर ही उसका काफी दबदबा था, चिराग तो खैर मुसलमान था। चिराग हाथ पर कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियां किश्वर और सुलताना खिड़कियों में से नीचे झाँकने लगीं। चिराग ने डयोढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज के कालर से पकड़कर खींच लिया और उसे गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया-- न, रक्खे पहलवान मुझे मत मार! हाय मुझे बचाओं! जुबैदा! मुझे बचा...! और ऊपर से जुबैदा चीखती हुई नीचे डयोढ़ी की तरफ भागी। रक्खे के एक शगिर्द ने चिराग की जद्दोजहद करती हुई बाहें पकड़ लीं ओर रक्खा उसकी जांघों को घुटने से दबाये हुए बोला-- चीखता क्यों है, भैण के... तुझे पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले!

और जुबैदा के नीचे पहुँचने से पहले ही उसने चिराग को पाकिस्तान दे दिया।

आसपास के घरों की खिड़कियाँ बंद हो गयीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनायी देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान देकर विदा कर दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पायी गयीं।

दो दिन तक चिराग के घर की खानातलाशी होती रही। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी। रक्खे पहलवान ने कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ देगा, क्योंकि उसने उस मकान पर नज़र रख कर ही चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी खरीद रखी थी। मगर आग लगाने वाले का पता ही नहीं चल सका, उसे ज़िन्दा गाड़ने की नौबत तो बाद में आती। अब साढ़े सात साल से रक्खा पहलवान उस मलबे को अपनी जागीर समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसी को

गाय-भैंस बांधेन देता था ओर न खोंचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी अनुमति के कोई ईंट भी नहीं उठा सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि सारी कहानी ज़रूर किसी न किसी तरह गनी के कानों तक पहुंच जायगी जैसे मलबे को देखकर उसे अपने-आप ही सारी घटना का पता चल जायगा। और गनी मलबे की मिट्टी नाखूनों से खोद-खोद कर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजे के चौखट को बाँह में लिये हुए रो रहा था-- बोल, चिरागदीना, बोल! तू कहाँ चला गया, ओए! ओ किश्वर! ओ सुल्तान! हाय मेरे बज्जे! ओएऽऽ! गनी को कहाँ छोड़ दिया, ओएऽऽ!

और भुरभुरे किवाड़ से कड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए हुए रक्खे पहलवान को किसी ने जगा दिया, या वह वैसे ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है ओर अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया, जिससे उसे खाँसी हो आयी और उसने कुँए के फ़र्श पर थूक दिया। मलबे की ओर देखकर उसकी छाती से धौंकनी का-सा स्वर निकला और उसका निचला ओंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

-- गनी अपने मलबे पर बैठा है।

उसके शागिर्द लच्छे पहलवाने ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

-- मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!

पहलवान ने झाग के कारण घरघराई हुई आवाज़ में कहा।

--मगर वह वहाँ पर बैठा है ।

लच्छे ने आंखों में रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

-- बैठा है, बैठा रहे, तू चिलम ला।

उसकी टांगें थोड़ी फैल गयीं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेरा।

-- मनोरी ने अगर उसे कुछ बताया-उताया तो...।

लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा।

--मनोरी की शामत आयी है!

लच्छे चला गया।

कुँए पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पतियों को उठा-उठाकर हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर उसके हाथ में दिया तो उसने कश खींचते हुए पूछा-- और भी तो किसी से गनी की बात नहीं हुई?

-- नहीं।

-- ले।

और उसने खांसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। लच्छे ने देखा कि मनोरी मलबे की तरफ से गनी की बांह पकड़े हुए आ रहा है। वह उकड़ू होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खें के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की ओर लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बांह पकड़े हुए उससे एक कदम आगे चल रहा था, जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुंए के पास से बिना रक्खें पहलवान को देखे ही निकल जाय। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएँ के पास पहुँचते न पहुँचते उसकी दोनों बाहें फैल गयीं और उसने कहा-- रक्खे पहलवान!

रक्खे ने गर्दन उठाकर और आंखें जरा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट-सी घबराहट हुई, पर वह बोला कुछ नहीं।

-- रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?

गनी ने बाहें नीची करके कहा-- मैं गनी हूँ, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप!

पहलवान ने सन्देहपूर्ण दृष्टि से उसका ऊपर से नीचे तक जायजा लिया। अब्दुल गनी की आंखों में उसे देखकर चमक आ गयी थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियाँ ज़रा फैल गयी थीं। रक्खे का निचला होंठ फड़का, फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला-- सुना गनिया!

गनी की बाहें फिर फैलने को हुई, परन्तु पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गयी। वह पीपल के तने का सहरा लेकर कुएँ की सिल पर बैठ गया.....

ऊपर खिड़कियों में चेमेगोइयां तेज हो गयीं कि अब दोनों आमने-सामने आ गए हैं, तो बात जरूर खुलेगी फिर हो सकता है, दोनों में गाली-गलौज भी हो अब रक्खा गनी को कुछ नहीं कह सकता, अब वो दिन नहीं रहे बड़ा मलबे का मालिक बनता था! असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मिल्कियत है क़िसी को गाय का खूँटा नहीं लगाने देता। मनोरी भी डरपोक है। उसने गनी को बताया क्यों नहीं कि रक्खे ने ही चिराग और उसके बीवी-बच्चों को मारा है? रक्खा आदमी नहीं है, सांड़ है। दिन भर सांड़ की तरह गली में घूमता है। ग़नी बेचारा कितना दुबला हो गया है। दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गये है!

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा-- देख, रक्खे पहलवान, क्या से क्या रह गया है? भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां मिट्टी देखने आया हूँ। बसे हुए घर की यही निशानी रह गयी है। तू सच पूछे, रक्खे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को जी नहीं करता।

और उसकी आंखें छलछला आईं।

पहलवान ने फैली हुई टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी और वह कश खींचने लगा।

-- तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?

गनी आंसू रोकता हुआ आग्रह के साथ बोला-- तुम लोग उसके पास थे, सबमें भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तुममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसे इतनी भी समझ नहीं आई!

-- ऐसा ही है।

रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज में कुछ अस्वाभाविक-सी गूँज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक-से गये थे। उसकी मूँछों के नीचे से पसीना उसके होंठों पर आ रहा था। उसके माथे पर किसी चीज का दबाव पड़ रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

-- पाकिस्तान का क्या हाल हैं?

उसने वैसे ही स्वर में पूछा। उसके गले की नसों में तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींच कर गली में थूक दिया।

-- मैं क्या हाल बताऊँ, रक्खे!

गनी दोनों हाथों से छड़ी पर जोर देकर झुकता हुआ बोला-- मेरा हाल पूछो, तो वह खुदा ही जानता है। मेरा चिराग साथ होता तो और बात थी। रक्खे! मैंने उसे समझाया था कि मेरे साथ चला चल। मगर वह अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर कैसे जाऊँ। यहाँ अपनी गली है, कोई ख़तरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में ख़तरा न सही, बाहर से तो ख़तरा आ सकता है। मकान की रखवाली के लिए चारों जनों ने जान दे दी। रक्खे! उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब आनी आई, तो रक्खे के रोके न रूक सकी।

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की, क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी दर्द कर रही थी। उसे अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास जैसे कोई चीज़ उसकी साँस को जकड़ रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था ओर उसके पैरों के तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में फलझड़ियाँ-सी ऊपर से उतरतीं और उसकी आँखों के सामने से तैरती हुई निकल जातीं। उसे अपनी जबान और होंठों के बीच का अन्तर कुछ ज्यादा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से होंठों के कोनों को साफ किया और उसके मुँह से निकला-

--हे प्रभु! सज्जिआ, तू ही है, तू ही है, तू ही है!

गनी ने लक्षित किया कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं ओर उसकी आंखों के इर्द-गिर्द दायरे गहरे हो आये हैं, तो वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला-- जी हल्कान न कर, रक्खिया। जो होनी थी, सो हो गयी। उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है। खुदा नेक की नेकी रखे और बद की बदी माफ करें। मेरे लिए चिराग नहीं, तो तुम लोग तो हो। मुझे आकर इतनी ही तसल्ली हुई कि उस ज़माने की कोई तो यादगार है। मैंने तुमको देख लिया, तो चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम लोगों को सेहतमंद रखे। जीते रहो और खुशियां देखो!

और गनी छड़ी पर दबाव देकर उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने फिर कहा-- अच्छा रक्खे पहलवान, याद रखना!

रक्खे के गले से स्वीकृति की मद्धम-सी आवाज निकली। अंगोछा बीच में लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी गली के वातावरण को हसरत भरी नजर से देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेमेगोइयां चलती रहीं कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर जरूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा। गनी के सामने रक्खे का तालू किस तरह खुश्क हो गया था! रक्खा अब किस मुँह से लोगों को मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा? बेचारी जुबैदा! बेचारी कितनी अच्छी थी! कभी किसी से मंदा बोल नहीं बोली। रक्खे मरदूद का घर, न घाट। इसे किस माँ-बहन का लिहाज था?

और थोड़ी ही देर में स्त्रियां घरों से गली में उतर आयीं, बच्चे गली में गुल्ली-उण्डा खेलने लगे और दो बारह-तेरह बरस की लड़कियां किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थमगुत्था हो गयीं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठा खंखरता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने वहाँ से गुजरते हुए उससे पूछा-

-- रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था?

-- आया था। रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

-- फिर?

-- फिर कुछ नहीं, चला गया।

रात होने पर पहलवान रोज़ की तरह गली के बाहर बाईं ओर की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज़ अक्सर वह रास्ते से गुजरने वाले परिचित लोगों को आवाज़ दे-देकर बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताया करता था। मगर उस दिन वह लच्छे को अपनी वैष्नों देवी की यात्रा का विवरण सुनाता रहा, जो उसने पन्द्रह साल पहले की थी। लच्छे को विदा करके वह गली में आया, तो

मलबे के पास लोकू पंडित की भैंस को खड़ी देखकर वह शेज़ की आदत के मुताबित उसे धक्के दे-दे कर हटाने लगा-- तत्-तत्...तत्- तत्...

और भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय बिकुल सुनसान थी। कमेटी की कोई बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अंधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता हुआ बह रहा था। रात की खामोशी के साथ मिली हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाज़ें मलबे की मिट्टी में से निकल रहीं थीं ऋ ऋ च्यु च्यु च्यु चिक्-चिक्-चिक् चिर्र्र्र्र्र् इर्र्र्र्र्-रीरीरीरी- चिर्र्र्र् एक भटका हुआ कौआ न जाने कहाँ से उड़कर कड़ी की चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ी के रेशे इधर-उधर छितरा गये। कौए के वहाँ बैठते ने बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा-- वउ-अउ अऊ-वऊ। कौवा कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ाता हुआ उड़कर कुएँ के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की ओर मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला-- दुर् दुर् दुर् दुरे।

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा-- वउ-अउ-वउ-वउ-वउ।

--हट हट, दुर्र्र्-दुर्र्र् दुरे

वऊ-अऊ- अऊ-अउ-अउ।

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की ओर फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान मुँह ही मुँह में कुत्ते की माँ को गाली देकर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएँ की सिल पर लेट गया। पहलवान के वहाँ से हटने पर कुत्ता गली में उतर आया और कुएँ की ओर मुँह करके भौंकने लगा। काफ़ी देर भौंक कर जब गली में उसे कोई प्राणी चलता-फिरता दिखायी नहीं दिया तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट आया और वहाँ कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

ठंडा गोश्त

सआदत हसन मंटो

ईश्वरसिंह ज्यों ही होटल के कमरे में दाखिला हुआ, कुलवन्त कौर पलंग पर से उठी। अपनी तेज-तेज आँखों से उसकी तरफ घूरकर देखा और दरवाजे की चिटखनी बन्द कर दी। रात के बारह बज चुके थे। शहर का वातावरण एक अजीब रहस्यमयी खामोशी में गर्क था।

कुलवन्त कौर पलंग पर आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी। ईशरसिंह, जो शायद अपने समस्यापूर्ण विचारों के उलझे हुए धागे खोल रहा था, हाथ में किरपान लेकर उस कोने में खड़ा था। कुछ क्षण इसी तरह खामोशी में बीत गये। कुलवन्त कौर को थोड़ी देर के बाद अपना आसन पसन्द न आया और दोनों टाँगें पलंग के नीचे लटकाकर उन्हें हिलाने लगी। ईशरसिंह फिर भी कुछ न बोला।

कुलवन्त कौर भरे-भरे हाथ-पैरों वाली औरत थी। चौड़े-चकले कूल्हे थुल-थुल करने वाले गोश्त से भरपूर। कुछ बहुत ही ज्यादा ऊपर को उठा हुआ सीना, तेज आँखें, ऊपरी होंठ पर सुरमई गुबार, ठोड़ी की बनावट से पता चलता था कि बड़े धड़ल्ले की औरत है।

ईशरसिंह सिर नीचा किये एक कोने में चुपचाप खड़ा था। सिर पर उसके कसकर बाँधी हुई पगड़ी ढीली हो रही थी। उसने हाथ में जो किरपान थामी हुई थी, उसमें थोड़ी-थोड़ी कम्पन थी, उसके आकार-प्रकार और डील-डौल से पता चलता था कि वह कुलवन्त कौर जैसी औरत के लिए सबसे उपयुक्त मर्द है।

कुछ क्षण जब इसी तरह खामोशी में बीत गये तो कुलवन्त कौर छलक पड़ी, लेकिन तेज-तेज आँखों को नचाकर वह सिर्फ इस कदर कह सकी—"ईशरसियाँ!"

ईशरसिंह ने गर्दन उठाकर कुलवन्त कौर की तरफ देखा, मगर उसकी निगाहों की गोलियों की ताब न लाकर मुँह दूसरी तरफ मोड लिया।

कुलवन्त कौर चिल्लायी—"ईशरसिंह!" लेकिन फौरन ही आवांज भींच ली, पलंग पर से उठकर उसकी तरफ होती हुई बोली—"कहाँ गायब रहे तुम इतने दिन?"

ईशरसिंह ने खुश्क होठों पर जबान फेरी, "मुझे मालूम नहीं।"

कुलवन्त कौर भन्ना गयी, "यह भी कोई माइयावाँ जवाब है!"

ईशरसिंह ने किरपान एक तरफ फेंक दी और पलंग पर लेट गया। ऐसा मालूम होता था, वह कई दिनों का बीमार है। कुलवन्त कौर ने पलंग की तरफ देखा, जो अब ईशरसिंह से लबालब भरा था और

उसके दिल में हमदर्दी की भावना पैदा हो गयी। चुनांचे उसके माथे पर हाथ रखकर उसने बड़े प्यार से पूछा—"जानी, क्या हुआ तुम्हें?"

ईशरसिंह छत की तरफ देख रहा था। उससे निगाहें हटाकर उसने कुलवन्त कौर ने परिचित चेहरे की टटोलना शुरू किया—"कुलवन्त।"

आवांज में दर्द था। कुलवन्त कौर सारी-की-सारी सिमटकर अपने ऊपरी होंठ में आ गयी, "हाँ, जानी।" कहकर वह उसको दाँतों से काटने लगी।

ईशरसिंह ने पगड़ी उतार दी। कुलवन्त कौर की तरफ सहारा लेनेवाली निगाहों से देखा। उसके गोश्त भरे कुल्हे पर जोर से थप्पा मारा और सिर को झटका देकर अपने-आपसे कहा, "इस कुड़ी दा दिमांग ही खराब है।"

झटके देने से उसके केश खुल गये। कुलवन्त अँगुलियों से उनमें कंघी करने लगी। ऐसा करते हुए उसने बड़े प्यार से पूछा, "ईशरसियाँ, कहाँ रहे तुम इतने दिन?"

"बुरे की मां के घर।" ईशरसिंह ने कुलवन्त कौर को घूरकर देखा और फौरन दोनों हाथों से उसके उभरे हुए सीने को मसलने लगा—"कसम वाहे गुरु की, बड़ी जानदार औरत हो!"

कुलवन्त कौर ने एक अदा के साथ ईशरसिंह के हाथ एक तरफ झटक दिये और पूछा, "तुम्हें मेरी कसम, बताओ कहाँ रहे?—शहर गये थे?"

ईशरसिंह ने एक ही लपेट में अपने बालों का जूड़ा बनाते हुए जवाब दिया, "नहीं।"

कुलवन्त कौर चिढ़ गयी, "नहीं, तुम जरूर शहर गये थे—और तुमने बहुत-सा रुपया लूटा है, जो मुझसे छुपा रहे हो।"

"वह अपने बाप का तुख्म न हो, जो तुमसे झूठ बोले।"

कुलवन्त कौर थोड़ी देर के लिए खामोश हो गयी, लेकिन फौरन ही भड़क उठी, "लेकिन मेरी समझ में नहीं आता उस रात तुम्हें हुआ क्या?—अच्छे-भले मेरे साथ लेटे थे। मुझे तुमने वे तमाम गहने पहना रखे थे, जो तुम शहर से लूटकर लाए थे। मेरी पप्पियाँ ले रहे थे। पर जाने एकदम तुम्हें क्या हुआ, उठे और कपड़े पहनकर बाहर निकल गये।"

ईशरसिंह का रंग जर्द हो गया। कुलवन्त ने यह तबदीली देखते ही कहा, "देखा, कैसे रंग पीला पड़ गया ईशरसियाँ, कसम वाहे गुरु की, जरूर कुछ दाल में काला है।"

"तेरी जान कसम, कुछ भी नहीं!"

ईशरसिंह की आवांज बेजान थी। कुलवन्ता कौर का शुबहा और ज्यादा मजबूत हो गया। ऊपरी होंठ भींचकर उसने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा, "ईशरसियाँ, क्या बात है, तुम वह नहीं हो, जो आज से आठ रोज पहले थे।"

ईशरसिंह एकदम उठ बैठा, जैसे किसी ने उस पर हमला किया था। कुलवन्त कौर को अपने मजबूत बाजुओं में समेटकर उसने पूरी ताकत के साथ झझोड़ना शुरू कर दिया, "जानी, मैं वहीं हूं—घुट-घुट कर पा जफ्फियाँ, तेरी निकले हड्डाँ दी गर्मी।"

कुलवन्त कौर ने कोई बाधा न दी, लेकिन वह शिकायत करती रही, "तुम्हें उस रात €या हो गया था?"

"बुरे की मां का वह हो गया था!"

"बताओगे नहीं?"

"कोई बात हो तो बताऊँ।"

"मुझे अपने हाथों से जलाओ, अगर झूठ बोलो।"

ईशरसिंह ने अपने बाजू उसकी गर्दन में डाल दिये और होंठ उसके होंठ पर गड़ा दिए। मूँछों के बाल कुलवन्त कौर के नथूनों में घुसे, तो उसे छींक आ गयी। ईशरसिंह ने अपनी सरदी उतार दी और कुलवन्त कौर को वासनामयी नंजरों से देखकर कहा, "आओ जानी, एक बाजी ताश की हो जाए।"

कुलवन्त कौर के ऊपरी होंठ पर पसीने की नन्ही-नन्ही बूंदें फूट आयीं। एक अदा के साथ उसने अपनी आँखों की पुतलियाँ घुमायीं और कहा, "चल, दफा हो।"

ईशरसिंह ने उसके भरे हुए कूल्हे पर जोर से चुटकी भरी। कुलवन्त कौर तड़पकर एक तरफ हट गयी, "न कर ईशरसियाँ, मेरे दर्द होता है!"

ईशरसिंह ने आगे बढ़कर कुलवन्त कौर की ऊपरी होंठ अपने दाँतों तले दबा लिया और कचकचाने लगा। कुलवन्त कौर बिलकुल पिघल गयी। ईशरसिंह ने अपना कुर्ता उतारकर फेंक दिया और कहा, "तो फिर हो जाए तुरप चाल।"

कुलवन्त कौर का ऊपरी होंठ कँपकँपाने लगा। ईशरसिंह ने दोनों हाथों से कुलवन्त कौर की कमींज का बेरा पकड़ा और जिस तरह बकरे की खाल उतारते हैं, उसी तरह उसको उतारकर एक तरफ रख दिया। फिर उसने घूरकर उसके नंगे बदन को देखा और जोर से उसके बाजू पर चुटकी भरते हुए कहा—"कुलवन्त, कसम वाहे गुरु की! बड़ी करारी औरत हो तुम।"

कुलवन्त कौर अपने बाजू पर उभरते हुए धŹबे को देखने लगी। "बड़ा जालिम है तू ईशरसियाँ।"

ईशरसिंह अपनी घनी काली मूँछों में मुस्काया, "होने दे आज जालिम।" और यह कहकर उसने और जुल्म ढाने शुरू किये। कुलवन्त कौन का ऊपरी होंठ दाँतों तले किचकिचाया, कान की लवों को काटा, उभरे हुए सीने को भँभोड़ा, भरे हुए कूल्हों पर आवांज पैदा करने वाले चाँटे मारे, गालों के मुंह भर-भरकर बोसे लिये, चूस-चूसकर उसका सीना थूकों से लथेड़ दिया। कुलवन्त कौर तेंज आँच पर चढ़ी हुई हांड़ी की तरह उबलने लगी। लेकिन ईशरसिंह उन तमाम हीलों के बावजूद खुद में हरकत पैदा न कर सका। जितने गुर और जितने दाँव उसे याद थे, सबके-सब उसने पिट जाने वाले पहलवान की तरह इस्तेमाल कर दिये, परन्तु कोई कारगर न हुआ। कुलवन्त कौर के सारे बदन के तार तनकर खुद-ब-खुद बज रहे थे, गैरजरूरी छेड़-छाड़ से तंग आकर कहा, "ईश्वरसियाँ, काफी फेंट चुका है, अब पत्ता फेंक!"

यह सुनते ही ईशरसिंह के हाथ से जैसे ताश की सारी गड्डी नीचे फिसल गयी। हाँफता हुआ वह कुलवन्त के पहलू में लेट गया और उसके माथे पर सर्द पसीने के लेप होने लगे।

कुलवन्त कौर ने उसे गरमाने की बहुत कोशिश की, मगर नाकाम रही। अब तक सब कुछ मुंह से कहे बगैर होता रहा था, लेकिन जब कुलवन्त कौर के क्रियापेक्षी अंगों को सख्त निराशा हुई तो वह झल्लाकर पलंग से उतर गयी। सामने खूँटी पर चादर पड़ी थी, उसे उतारकर उसने जल्दी-जल्दी ओढ़कर और नथुने फुलाकर बिफरे हुए लहजे में कहा, "ईशरसियाँ, वह कौन हरामजादी है, जिसके पास तू इतने दिन रहकर आया है और जिसने तुझे निचोड़ डाला है?"

कुलवन्त कौर गुस्से से उबलने लगी, "मैं पूछती हूं, कौन है वह चड्डो—है वह उल्फती, कौन है वह चोर-पत्ता?"

ईशरसिंह ने थके हुए लहजे में कहा, "कोई भी नहीं कुलवन्त, कोई भी नहीं।"

कुलवन्त कौर ने अपने उभरे हुए कूल्हों पर हाथ रखकर एक दृढ़ता के साथ कहा—"ईशरसियाँ! मैं आज झूठ-सच जानकर रहूँगी—खा वाहे गुरु जी की कसम—इसकी तह में कोई औरत नहीं?"

ईशरसिंह ने कुछ कहना चाहा, मगर कुलवन्त कौर ने इसकी इजाजत न दी,

"कसम खाने से पहले सोच ले कि मैं भी सरदार निहालसिंह की बेटी हूं तक्का-बोटी कर दूँगी अगर तूने झूठ बोला—ले, अब खा वाहे गुरु जी की कसम—इसकी तह में कोई औरत नहीं?"

ईशरसिंह ने बड़े दुःख के साथ हाँ में सिर हिलाया। कुलवन्त कौर बिलकुल दीवानी हो गयी। लपककर कोने में से किरपान उठायी। म्यान को केले के छिलके की तरह उतारकर एक तरफ फेंका और ईशरसिंह पर वार कर दिया।

आन-की-आन में लहू के फव्वारे छूट पड़े। कुलवन्त कौर को इससे भी तसल्ली न हुई तो उसने वहशी बिल्लियों की तरह ईशरसिंह के केश नोचने शुरू कर दिये। साथ-ही-साथ वह अपनी नामालूम

सौत को मोटी-मोटी गालियाँ देती रही। ईशरसिंह ने थोड़ी देर बाद दुबली आवांज में विनती की, "जाने दे अब कुलवन्त, जाने दे।"

आवांज में बला का दर्द था। कुलवन्त कौर पीछे हट गयी।

खून ईशरसिंह के गले में उड़-उड़ कर उसकी मूँछों पर गिर रहा था। उसने अपने काँपते होंठ खोले और कुलवन्त कौर की तरफ शुक्रियों और शिकायतों की मिली-जुली निगाहों से देखा।

"मेरी जान, तुमने बहुत जल्दी की—लेकिन जो हुआ, ठीक है।"

कुलवन्त कौर की ईष्या फिर भड़की, "मगर वह कौन है, तेरी मां?"

लहू ईशरसिंह की जबान तक पहुँच गया। जब उसने उसका स्वाद चखा तो उसके बदले में झुरझुरी-सी दौड़ गयी।

"और मैं...और मैं भेनी या छः आदमियों को कत्ल कर चुका हूं—इसी किरपान से।"

कुलवन्त कौर के दिमाग में दूसरी औरत थी—"मैं पूछती हूं कौन है वह हरामजादी?"

ईशरसिंह की आँखें धुँधला रही थीं। एक हल्की-सी चमक उनमें पैदा हुई और उसने कुलवन्त कौर से कहा, "गाली न दे उस भड़वी को।"

कुलवन्त कौर चिल्लायी, "मैं पूछती हूं, वह कौन?"

ईशरसिंह के गले में आवांज रुँध गयी—"बताता हूं," कहकर उसने अपनी गर्दन पर हाथ फेरा और उस पर अपनी जीता-जीता खून देखकर मुस्कराया, "इनसान माइयाँ भी एक अजीब चीज है।"

कुलवन्त कौर उसके जवाब का इन्तजार कर रही थी, "ईशरसिंह, तू मतलब की बात कर।"

ईशरसिंह की मुस्कराहट उसकी लहू भरी मूँछों में और ज्यादा फैल गयी, "मतलब ही की बात कर रहा हूं—गला चिरा हुआ है माइयाँ मेरा—अब धीरे-धीरे ही सारी बात बताऊँगा।"

और जब वह बताने लगा तो उसके माथे पर ठंडे पसीने के लेप होने लगे, "कुलवन्त! मेरी जान—मैं तुम्हें नहीं बता सकता, मेरे साथ क्या हुआ?—इनसान कुड़िया भी एक अजीब चीज है—शहर में लूट मची तो सबकी तरह मैंने भी इसमें हिस्सा लिया—गहने-पाते और रुपये-पैसे जो भी हाथ लगे, वे मैंने तुम्हें दे दिये—लेकिन एक बात तुम्हें न बतायी?"

ईशरसिंह ने घाव में दर्द महसूस किया और कराहने लगा। कुलवन्त कौन ने उसकी तरफ तवज्जह न दी और बड़ी बेरहमी से पूछा, "कौन-सी बात?" ईशरसिंह ने मूँछों पर जमे हुए जरिए उड़ाते हुए कहा, "जिस मकान पर...मैंने धावा बोला था...उसमें सात...उसमें सात आदमी थे—छः मैंने कत्ल कर दिये...इसी किरपान से, जिससे तूने मुझे...छोड़ इसे...सुन...एक लड़की थी, बहुत ही सुन्दर, उसको उठाकर मैं अपने साथ ले आया।"

कुलवन्त कौर खामोश सुनती रही। ईशरसिंह ने एक बार फिर फूँक मारकर मूँछों पर से लहू उड़ाया—कुलवन्ती जानी, मैं तुमसे क्या कहूँ, कितनी सुन्दर थी—मैं उसे भी मार डालता, पर मैंने कहा, "नहीं ईशरसियाँ, कुलवन्त कौर ते हर रोज मजे लेता है, यह मेवा भी चखकर देख!"

कुलवन्त कौर ने सिर्फ इस कदर कहा, "हूं।"

"और मैं उसे कन्धे पर डालकर चला दिया...रास्ते में...क्या कह रहा था मैं...हाँ, रास्ते में...नहर की पटरी के पास, थूहड़ की झाड़ियों तले मैंने उसे लिटा दिया—पहले सोचा कि फेंटूँ, फिर खयाल आया कि नहीं..." यह कहते-कहते ईशरसिंह की जबान सूख गयी।

कुलवन्त ने थूक निकलकर हलक तर किया और पूछा, "फिर क्या हुआ?"

ईशरसिंह के हलक से मुश्किल से ये शब्द निकले, "मैंने...मैंने पत्ता फेंका...लेकिन...लेकिन...।"

उसकी आवांज डूब गयी।

कुलवन्त कौर ने उसे झिंझोड़ा, "फिर क्या हुआ?"

ईशरसिंह ने अपनी बन्द होती आँखें खोलीं और कुलवन्त कौर के जिस्म की तरफ देखा, जिसकी बोटी-बोटी थिरक रही थी—"वह...वह मरी हुई थी...लाश थी...बिलकुल ठंडा गोश्त...जानी, मुझे अपना हाथ दे...!"

कुलवन्त कौर ने अपना हाथ ईशरसिंह के हाथ पर रखा जो बर्फ से भी ज्यादा ठंडा था।

(उर्दू से अनुवाद : शम्भु यादव)

तुलसी का बिरवा

सैयद वलीउल्लाह

(बांग्ला कहानी : अनुवाद : लेखक द्वारा)

वह एक दो मंज़िला मकान था—सीमेण्ट के पुल के करीब सौ गज दूर। इन लोगों ने उस मकान पर कब्जा कर लिया। देश विभाजन के हंगामे में इस शहर में आने के बाद सुबह से शाम तक वे एक कामचलाऊ डेरे की तलाश में घूम रहे थे।

एक दिन उन लोगों ने यह मकान देखा। पहले वे हैरान रह गये। बाद में सारे दल के साथ आकर, ताला-वाला तोड़कर, हो-हल्ले के साथ उस घर में प्रवेश कर गये।

शाम तक सारे शहर को इस मकान का पता चल गया। और लोग भी आने लगे, पर वे लोग अकड़कर डट गये। दिमाग ठंडा रखकर बोले—"देखिए साहब, इस छोटे से अँधेरे कमरे में भी चार-चार बिस्तर लगे हैं...ज़रा-सी भी जगह खाली नहीं है।"

फिर वे आने वालों के प्रति हमदर्दी जताने लगे—"हम आप लोगों की तकलीफ महसूस कर सकते हैं ! आप लोग ज़रा पहले आते तो यह कोने वाला कमरा मिल सकता था...अभी दो घंटे पहले ही तो एकाउंट्स दफ्तर के एक मोटे आदमी ने उस पर कब्जा किया है..."

वे लोग अपनी पुरानी जगहों के बारे में सोचते और खुश होते कि अब उन्हें वैसे सीलनभरी और रोगीली जगह में नहीं रहना पड़ रहा, कि अब उन्हें तपेदिक का डर नहीं है। दिन मजे से गुजर रहे थे।

मोदाब्बेर ज़रा हुल्लड़बाज आदमी था। एक दिन वह नीम की दातून करता हुआ आँगन में टहल रहा था। अचानक उसकी नज़र रसोई घर के बायें कोने पर चली गयी। वहाँ ईंटों का चौकोर, छोटा-सा चौरा बना था। उसमें तुलसी का एक बिरवा लगा था। तुलसी की पत्तियाँ कुम्हला गयी थीं। और उनका हरा रंग कत्थई-सा हो गया था। उसके नीचे घास उग आयी थी।

मोदाब्बेर मुँह से दातून निकालकर जोर से चिल्लाया। उसी चिल्लाहट सुनकर सभी लोग आँगन में इकट्ठे हो गये। वह जोर-जोर से बोल रहा था—तुलसी का पौधा हिन्दूपन की निशानी है। हमारे रहते हिन्दुओं की कोई निशानी नहीं रहेगी। इसे उखाड़ फेंको..."

सब लोग स्तब्ध रह गये। मकान का सूनापन शक्ल बदलने लगा। तुलसी का बिरवा खामोशी में भी बहुत कुछ कह गया।

हिन्दू रीति-रिवाज से यह लोग भली-भाँति वाकिफ नहीं। फिर भी सुन रखा है कि हिन्दू घरों में हर शाम को घर की मालकिन तुलसी के नीचे साँझ का दीया जलाती है और गले में आँचल लपेटकर प्रणाम करती है।

उनके सामने एक हिन्दू औरत की शक्ल उभरने लगी जो गले में आँचल लपेटे सँझबाती कर रही है। मतीन कभी रेलवे में काम करता था। वह सोच रहा है...इस घर की मालिकन अब कहाँ होगी? शायद कलकत्ता, आसनसोल या हावड़ा में! कहीं भी हो लेकिन हर साँझ को इस तुलसीचौरा की याद कर उसकी आँखें नम हो जाती होंगी!

मतीन के खयालों में नम आँखें लिए एक औरत उतर आयी। वह बोल पड़ा—"रहने दो उसे। हम लोग कोई पूजा तो कर नहीं रहे...मकान में तुलसी का एक पौधा होना अच्छा ही है...नजले-जुकाम में इसकी पत्तियों का रस फायदेमन्द होता है...कल से यूनुस को ही नजला हो रहा है..."

मोदाब्बेर ने इधर-उधर देखा। सभी की मानो यही राय हो। उनमें इनायत कुछ मौलवी किस्म का है—पाँचों वक्त की नमाज पढ़ता है, कुरान भी पढ़ता है। इस समय वह भी खामोश खड़ा रहा। शायद उसके जेहन में भी किसी की नम आँखें उतर गयी हों! सबको खामोश देखा, मोदाब्बेर ने भी हथियार डाल दिये।

एक दिन मोदाब्बेर घबराया हुआ आया और बोला—"पुलिस आयी है।" "क्यों?" एक प्रश्न सबके चेहरों पर चिपक गया।

मतीन बाहर निकल आया। पुलिस के सब-इंस्पेक्टर ने उसे आर्डर दिखाते हुए कहा—"सरकार ने यह मकान रिक्वीजीशन किया है। आप लोग चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर इसे खाली कर दीजिए।"

और एक दिन वे अपने सारे दल के साथ चले गये। और वह तुलसा का बिरवा एक बार फिर खामोश हो गया।

(बांग्ला कहानी : अनुवाद : लेखक द्वारा)

माँ-बेटा

हयातुल्ला अंसारी

(उर्दू से अनुवाद : डॉ. सादिक़)

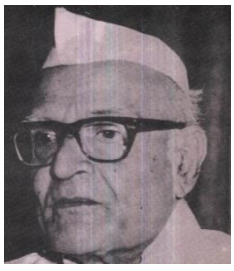

मोहिना आँधी और पानी में रात-भर भागती रही, ठिठुरती रही और भागती रही। अँधेरा इस ग़ज़ब का था कि दो क़दम आगे का दरख़्त तक नहीं सुझाई देता था। खेत और मेढ़, टीला और खाई, पूरब और पश्चिम, ज़मीन और आसमान—सब असीम काली दिशाओं में गुम हो गये थे। हर क़दम पर उसे अन्देशा था कि मैं किसी कुएँ या नदी या नाले में न जा गिरूँ, लेकिन फिर भी वह भागती रही। बल्कि यह अन्देशा तो भागने में उसका और साहस बढ़ा रहा था। मौत अचानक आकर मेरी इस दिशाहीन की ज़िन्दगी का अन्त कर दे। यह तो एक सुहावना सपना था। एक ओर तो उसने यह इरादा भी कर लिया कि सामने के कुएँ में जिसे बिजली ने चमककर दिखा दिया था, अपने को गिरा दूँ, लेकिन पापी दिल ने हामी भी भरी तो रोकर। शायद उसको अब भी उम्मीद थी कि कभी-न-कभी ज़िन्दगी के क्षितिज पर कोई-न-कोई किरन फूट आएगी—मूर्ख!

वह भागती रही और अन्धाधुन्ध भागती रही, लेकिन उसकी ज़िन्दगी ऐसी निकम्मी थी कि न खाई ने पूछा न खन्दक ने निगला, न भेड़िए ने फाड़ा, न साँप ने डसा, न कोई दरख़्त फट पड़ा और न बिजली ने भस्म किया। पापिन ऐसी जली ना कोयला भई न राख।

मोमिना जब थककर एक पुराने बरगद की भीगी जड़ पर गिरी तो पौ फट रही थी, घटा छिट रही थी। कुछ दूर पेड़ों, मकानों और अँधेरे के टीलों के बीच में एक शिवाले की चोटी नज़र आ रही थी। शिवाला! इसी के मानने वालों ने तो मुसलमानों पर जुल्म ढाये हैं। कितने बच्चों को यतीम किया!! कितनी औरतों को बेवा किया है, कितने मासूम औरतों की इज्जत लूटी है!! एक दो दिन नहीं, लाखों घरों को बर्बाद किया है और अभी तक उनकी खून की प्यास बुझी नहीं है।

बारिश से धुली हुई सुबह के आने से दृश्य में रौनक आ गयी। हरे-भरे खेतों ने अँगड़ाई ली। कौवों ने काँव-काँव का शोर मचाया। पेड़ों ने नीम की लहरों पर तालियाँ बजायीं और दूर पर किसी भैंस ने अपने कटड़े को पुकारा। सामने के शिवाले के गिर्द अब पेड़ों से ढके हुए कच्चे घर भी नज़र आने लगे थे। यह दृश्य उन लोगों के लिए जिनकी ज़िन्दगी देहात में गुज़री है बड़ा आकर्षण रखता है। मोमिना उसी में खो गयी और उसकी कल्पना की आँखें उन घरों के अन्दर की चहल-पहल को देखने लगीं। किसान बैल खोल रहे हैं। उनकी स्त्रियाँ गाय को दूह रही है, लड़कियाँ दूध बिलो रही हैं। धोबी कपड़ों की लादी गधे पर रखे घाट जा रहा है। सामने के पक्के घर में दबे हुए कंडों को कुरेद कर आग बनायी जा

रही है। जवान डण्ड पेल रहे हैं। औरतें गगरियों को ले कुओं पर जा रही हैं। उनके बच्चे सोते से उठे हैं और भूख से रूँ-रूँ कर रहे हैं।

कल्पना ने यह भैरवी कुछ इस तरह अलापी कि मोमिना मस्त हो गयी और थोड़ी देर के लिए अपने गम को भूल गयी। फिर उसने सीने में जिन्दगी और उम्मीद की कोंपलें फूटने लगीं। गाँव के किनारे एक पुख्ता मकान भी था जो मामिना को अपना मकान याद दिला रहा था। उसमें भी बड़ा-सा फाटक लगा था। उसकी बगल में भी मर्दाना कमरा था। उसके भी दो बड़े-बड़े सायादार दरख्त थे। हाय अपने घर के सामने सायादार दरख्त, जिनके नीचे उसका बचपन गुज़रा था। उसके बच्चे महरून, शम्स और मेहताब भी वहाँ खेलते थे। उसी दाहिनी तरफ के नीचे ही तो मैंने तो हाज़राने तालाब से मिट्टी लाकर घरौंदा बनाया था। बनाने में हज्जे की उँगली में शीशे का टुकड़ा लग गया और खून निकल आया। हम दोनों खून देखकर कितना डर गये थे कि अब घर में डाँट पड़ेगी लेकिन चचीजान ने दोनों को बचा लिया। फिर उसी घरौंदे में हाज़रा के गुड्डे और मेरी गुडिया की शादी हुई। बेवा शबरातन, बहारो, सुन्दरी और जाने कितनी लड़कियाँ इकट्ठा हुई और घरौंदा जो मेरा घर था वहाँ बारात आयी। बारात बैठी थी कि दरख्त से एक इमली गिरी और मैंने दौडक़र उठा ली। हज्जे बोली, वाह यह इमली तो बारातियों का हक है। मैंने कहा कि बाराती आये हैं वे खाना खायेंगे, दहेज लेंगे और गुडिया को बियाह ले जाएँगे या सारा घर ले लेंगे। फिर तो हज्जे बिगड़ गयी। मैंने इस पर कहा कि चलो मैं बियाह नहीं करती। फिर क्या था सब बराती बिगड़ गये और सख्त जंग छिड़ गयी। इतने में उधर से आ निकले दादा मियाँ। उन्होंने मुझे और हज्जे को पुकारा और पूछा क्या मामला है! मैंने कहा कि इमली मैंने उठायी थी इसलिए मेरी हुई। हज्जे बोली कि नहीं मेरी हुई। दादा मियाँ ने सब लड़कियों को नाम लेकर पुकारा। हम सब डर रहे थे कि अब सब डाँटे जाएँगे। लेकिन दादा मियाँ पूरा मुकदमा सुनकर हज्जे से कहने लगे—बताओ बेटा तुम इमली लोगी या आम?

इमली से आम की बातें, यह पलटा बहुत मजे का था। हम सबके चेहरे पर बहाली आ गयी।

हज्जे लहककर बोली, "आ।"

"क्यों लड़कियों कितने-कितने आम खाओगी?"

हज्जे, "दो-दो!"

दादा मियाँ ने हर लडक़ी से पूछा, हरेक ने यही जवाब दिया "दो-दो", लेकिन फत्तो हिम्मत करके बोली, "तीन-तीन" फिर क्या था सब लड़कियाँ चिल्ला उठीं—"तीन-तीन" मैंने दिल मजबूत करके कहा—"चार-चार"? फिर तो हर तरफ से शोर होने लगा—"चार-चार"। इसी तरह बोली बढ़ती गयी और दस पर आकर ठहरी। इससे आगे बढ़ते लड़कियाँ डर रही थीं।

कि कहीं ऐसा न हो कि दादा मियाँ नाराज हो जाएँ। और फिर जितने आम मिल रहे हैं वे भी न मिलें।

दादा मियाँ खामोशी से सुन रहे थे। जब नीलामी बोली आगे नहीं बढ़ी तो वह कहने लगे, "अच्छा, अगर तुमको ग्यारह-ग्यारह मिलें?"

अब तो लड़कियों में जैसी खुशी की मिर्चें लग गयीं। वे बेसब्री से चीखने लगीं, "हाँ दादा मियाँ, ग्यारह-ग्यारह।"

"और अगर बारह-बारह मिलें?"

लड़कियाँ ठट्ठे मारने लगीं। दो-चार दादा मियाँ से चिमट भी गयीं। सब शोर कर रही थीं। "हाँ दादा मियाँ बारह-बारह।"

अब तो लड़कियाँ नाचने लगीं और गुल-शोर से उन्होंने सारा गाँव सिर पर उठा लिया। इतना शोर हुआ कि और बज्जे भी आने लगे और भीड़ बढ़ने लगी।

दादा मियाँ ने आवाज़ दी, 'मीको, आमों का टोकरा और बाल्टियों में पानी ले आओ।"

बाल्टियों में पानी आ गया। उसमें आम डाल दिये गये। और सब लड़कियाँ और लड़के चूसने लगे। आम खिलाने के बाद दादा मियाँ ने दूध मँगवाया। उसे देखकर रामदई, सुन्दरी और मोहन खिसकने लगे तो दादा मियाँ ने कहा, "कहाँ चली तुम्हारे लिए भी दूध आ रहा है।"

उन बज्जों के लिए अलग दूध आ गया। साथ-साथ कुल्लढ़ भी। दोपहर तक यही हंगामा रहा।

मेरी शादी भी उन्हीं दरख्तों के नीचे हुई थी। बड़ा-सा शामियाना लगा था। नीचे दरियाँ, चाँदनियाँ और कालीन बिछे थे। रंडियाँ 'मुबारकबाद' गा रही थीं। कितना शोर था। पुलाव की देग दे जाओ। बफाती कहाँ उड़ गया? अरे, दूध का घड़ा किसने लुढ़का दिया। ऐ मीको, ऐ कल्लू, ऐ रमजानी, ऐ मंगलदास, ऐ बाबा जी! कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती थी। इस पर रौशन-चौकी का शोर। बर्तनों की खनाखन। देगों की ठन-ठन। बज्जों का रोना। घोड़ों का हिनहिनाना। सब कैसा अजीब-सा मालूम होता था।

मैं दुल्हन बनी पसीने में सराबोर एक कोठड़ी में मुँह ढके लेटी थी। दादा मियाँ की यही ख्वाहिश थी कि उनकी पोती-पोता में रिश्ता हो जाएँ। इसलिए उनकी मौत के बाद अब्बा और चाचा ने रिश्ता तय कर लिया। मँगनी होते ही मुझे तो उनके नाम से शर्म आने लगी और पर्दा करने लगी, लेकिन वे मुझे मौका निकाल-निकालकर ताकने लगे। उनकी यह शरारत कि इस दरख्त में झूला डाला और खड़े होकर इतने बड़े-बड़े पेंग लेने लगे कि मैं कोठे पर थी तिस पर भी उनसे नज़रें मिल गयीं। पर मैं हट

गयी। फिर तो ताने मारने लगे—काकुल की तरह आज तो बल खाये हो, मालूम हुआ गैर के भड़काये हुए हो।

मैं अपने दिल में कहने लगी कि ये गैर या तो अम्मा को कह रहे हैं या अब्बा को। लेकिन उनमें से किसी पर यह इल्जाम लगाना कि उन्होंने मुझे भड़काया है, कैसी बुरी बात है।

मोमिना अपना यह भोलापन याद करके मुस्करा दी। आज उसे झूले का किस्सा बरसों बाद याद आया। वर्ना इसे कब की भूल चुकी थी।

मोमिना की जब आँख खुली तो सूरज चौथाई आसमान तय कर चुका था और वह धूप में पड़ी जल रही थी। खेत, बाग, मन्दिर और मकान—सब धूप से मालामाल थे। मोमिना ने अँगड़ाई लेकर रंगीन और सुनहरे, ज़मीन और आस्मान की तरफ देखा और उठी। उठते ही उसे खयाल आया कि कहीं किसी ने मुझे देखा न लिया हो और कहीं यह गाँव दुश्मनों का न हो। इस खयाल का आना था कि वह काँप गयी और अपने को इस तरह बेखबर हो जाने पर बुरा भला कहने लगी, लेकिन उसे किसी तरफ आदमी का नामो-निशान भी नज़र नहीं आया। खेत खाली, बाग खाली, कच्चा रास्ता खाली। गाँव के अन्दर भी न कोई आदमी चलता फिरता नज़र आ रहा था और न किसी की आवाज़ सुनाई दे रही थी। उसे यह देखकर इत्मीनान भी हुआ और हैरत भी कि गाँव खाली क्यों है?

कहीं ऐसी बात तो नहीं कि यहाँ के सब बसने वाले मुसलमान हों और वे डर कर पाकिस्तान भाग गये हों। मुमकिन तो है ऐसा? पर अभी ज़रा और देख लेना चाहिए कि वहाँ कोई हिन्दू या सिख तो नहीं है।

मोमिना को बहुत भूख लगी थी। एक बरसाती गड्ढे से पानी पीकर उसने पेट फुला लिया। उस समय उसे यह खुशखबरी मिली कि उसकी कमीज और दुपट्टा सूख चुके हैं। केवल सलवार कमर के पास भीगी रह गयी है। मोमिना ने यह इत्मीनान करके कि आसपास वाकई कोई आदमी नहीं है, दुपट्टे की तहमद बाँध ली और सलवार सूखने फैला दी।

जब मोमिना की नज़र अपनी खुली पिण्डलियों पर पड़ी तो दिल पर एक सख्त घूँसा लगा कि हाय! इस जिस्म पर इन चार-पाँच दिनों में क्या-क्या बीत गयी। हाय! कैसी बेहयाई के दिन-रात काटना पड़े हैं। दो दिन तक मेरे और मेरे गाँव की पन्द्रह-बीस औरतों के जिस्म पर कपड़े की एक धज्जी तक न थी। इस हाल में सौ-दो सौ मर्दों के बीच में रहना पड़ा। वह उनका शराब पी-पीकर नंगे नाच और बेचारी औरतों के साथ बेशर्मी की हरकतें करना।

उफ! उस कलूटे मुए बदबूदार गाली बकने वाले के बाजुओं में, कमबख्त मुसलमानों से नफरत के कारण मुझे इस्तेमाल करता था। हाय, मैं क्यों यह नजारा देखती रही। क्यों न मैं भी इज्जे की तरह

दौड़कर कुएँ में फाँद पड़ी। मैं बेहया यह शर्मनाक ज़िन्दगी लेकर अब कहाँ जाऊँ? शर्मनाक-सी शर्मनाक! उफ़!

मोमिना को अपनी दूध-पीती बच्ची लाड़ली का आँखों के सामने मारा जाना याद आ गया और फिर एक 'हाय' के साथ पूरा दृश्य आँखों के सामने फिर गया।

दिन के नौ बजे होंगे, अब्बा बाहर की कोठरी में भूसा भरवा रहे थे ताकि बारिश में ख़राब न हो जाए। चचा ने बाहर पेड़ के नीचे हुक्का मँगवाया था। बच्चे मदरसे जाने के लिए रोटी माँग रहे थे। महरून जल्दी-जल्दी उनके खाने का बन्दोबस्त कर रही थी कि अब्बा, चचा और वह भागते हुए घर में आये। चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आते ही चिल्लाये—पर्दे में जाओ। मैं, चची रूकैया और लड़कियाँ अभी कमरे में घुसने भी न पाये थे कि अब्बा ने पुकारा—अन्दर आ जाओ। आवाज़ के साथ ही खैराती, मौला, गनी, जुमेराती—सब लाठियाँ लिए अन्दर आ गये। फाटक बन्द कर लिया गया। अब्बा ने हुक्म दिया कि खैराती, तुम ऊपर छत पर चढ़ जाओ। चचा से कहा, तुम गनी और मौला को लेकर पिछवाड़े के दरवाज़े पर जाओ। खुद अब्बा उनको साथ लेकर फाटक की तरफ गये।

उन लोगों के आने से पहले मैं लाड़ली का दूध पिला रही थी। उस समय कुछ शोर कान में आया। मैं सोचने लगी कि एक तो आज बाजार का दिन नहीं है और दूसरे यह दिल्ली-वाली सड़क की तरफ से आ रहा है।

यह शोर कैसा है? अब जो यह हंगामा हुआ तो मैं समझी कोई भयानक बात है।

अभी अब्बा और चचा वगैरह अपनी जगहों पर भी नहीं पहुँचे होंगे कि शोर हमारे घर के करीब आ गया और नारे सुनाई देने लगे—

बजरंगबली की जय!

मुसलमानों का नास हो!

खून का बदला खून है!

मुसलमानों को भारत से निकाल दो!

महात्मा गाँधी की जय!

बन्दूकें चलीं। मरने वालों की चीखें सुनाई दी और ज़रा ही देर में हमारे फाटक पर धड़-धड़ होने लगा। फिर इतना शोर हुआ। कि कुछ समय में नहीं आता था कि क्या हो रहा है। कई बन्दूकें एक साथ छूटीं। अब्बा की चीख सुनाई दी और साथ ही बजरंगबली की जय और फिर हमारा आँगन हमलावरों से पट गया। उन लोगों में खद्दर की टोपियाँ भी, फ़ौजी वर्दियाँ भी थी, साधू और संन्यासी भी और हमारे गाँव के बहुत-से जान-पहचान वाले लोग भी थे। ज़रा देर में ये लोग एक बल्ली लाये और उसे दस-

बारह आदमी पकडक़र झोंक देकर जिस कमरे में हम थे, उसके एक किवाड़ पर मारने लगे। वह चर-चर करने लगा। हम सबको अपनी मौत का यकीन हो गया। जो-जो आयतें याद आयीं पढ़ने लगे। बच्चों को समझया कि रोओ नहीं, खुदा को याद करो। इतने में चचा और मौला किसी तरफ से दौड़ते हुए कमरे की ओर आये और लाठियाँ तानकर दरवाज़े के सामने खड़े हो गये। वे अभी क़दम जमा भी नहीं पाये थे कि छह-सात बन्दूकें एक साथ छूटीं। वे दोनों जिस जगह थे वहीं ढेर हो गये। मेरी आँखों में दुनिया अन्धेर हो गयी और मुँह से चीख निकल गयी। चची ने कान में कहा—बीबी खुदा को याद करो।

उन दोनों के मरते ही दरवाजा टूट गया। हमलावर अन्दर आ गये और हम सबको पकड़-पकडक़र बात की बात में घर के बाहर पहुँचा दिया। एक जवान पिस्तौल हाथ में लिए खड़ा हुक्म दे रहा था। उसने मेरी और महरून की सूरतें देखकर कहा—यह लडक़ी तो काम की है और यह औरत भी कुछ बुरी नहीं, लेकिन उसकी गोद में क्या झंझट है, फेंको इसे।

मैं लाड़ली को चिमटाकर बैठ गयी, लेकिन तीन-चार जवानों ने मुझे पछाड़ कर लाड़ली को छीन लिया और एक टाँग पकडक़र ज़मीन पर दे मारा। उसका भेजा बह निकला। हाय! बुझती हुई वो नजरें! माँ मर जाती उसके बदले। जालिमों ने इस पर एक कहकहा लगाया।

लाड़ली का दम निकला ही था कि कुछ हमलावर उनको शम्स और मेहताब के साथ खींचते हुए लाये और सरदार ने कहा—यह अपने बच्चों को लेकर भाग रहा था।
वह जख्मी थे। हो सकता है कि बच्चों को बचाने के लिए उन्होंने कुछ मुकाबला किया हो। सरदार ने हुक्म दिया कि इसको इसी तरह कुएँ में डाल दो। सामने एक कुएँ में लाशें फेंकी जा रही थीं। उसी में वे झोंक दिये गये। हाय! वह अन्दर से रह-रहकर पुकारते थे—जालिमो! खुदा के लिए मुझे एक गोली मार दो। उनकी ओर से मैं भी एक-एक की खुशामद करती रही, पर किसी ने गोली न मारी।

शम्स और मेहताब को ठायें-ठायें गोलियाँ मार दी गयी और वे "हाय! अम्मा" कहकर ख़त्म हो गये। फिर मुर्दा बेटों को जिन्दा बाप के ऊपर फेंक दिया गया। मुझे और महरून को नंगा करके नंगी औरतों की भीड़ में शामिल कर दिया गया। उसी भीड़ में हज्जे भी थी और महरून की तरह सिर झुकाये फूट-फूटकर रो रही थी।

उसी रात जालिमों ने खूब शराबें पीं और हम लोगों को बेदर्दी से इस्तेमाल किया। हमारे आँसुओं और चीखों में उन लोगों को मजा आता था और जोश में इजाफा होता था। हज्जे मौका पाकर उन लोगों के बीच से निकल भागी और तीर की तरह जाकर एक कुएँ में जो सामने कुछ दूरी पर था, कूद पड़ी। कैसी बहादुर और खुशनसीब थी वह! उन लोगों को एक माल निकल जाने का दुख तो बहुत हुआ लेकिन किसी से इतना नहीं हुआ कि निकालने की कोशिश करता।

सुबह औरतों का बँटवारा हुआ। महरून नामुराद को खुदा जने कौन ले गया, मैं कलूटे खबीस के हिस्से में आयी। वह लेकर अपने घर आया। हाय, वहाँ की शर्मनाक ज़िन्दगी! बातों से मुझे पता चल गया कि वहाँ से पाकिस्तान की सरहद करीब है। पिछली रात अँधेरे में किसी तरह वहाँ से निकल भागी और अपने हिसाब से पाकिस्तान की ओर चल पड़ी। अब पता नहीं कि कहाँ हूँ। हाय! मुझ बेहया में इतनी हिम्मत क्यों नहीं है कि हज्जे की तरह अपनी नापाक ज़िन्दगी को ख़त्म कर लूँ।

इन ख़यालों के साथ मोमिना के दिल में एक हूक उठी जो दिल और दिमाग को इस तरह तपाने लगी जैसे दहकती भट्टी में लोहा। आह! चारों ओर नाले, ताल, तलैया हद यह है कि ज़रा-ज़रा से गड्ढे तक पानी से ठिले हुए थे। लेकिन मोमिना की आँखें थीं कि दो बूँद पानी के लिए इस तरह तड़प रही थीं जैसे तपते रेगिस्तान में रेत के जर्रे।

कई दिन की बारिश के बाद जो धूप निकली तो चीटियाँ अण्डे सुखाने और अपना खाना जमा करने के लिए बाहर निकल पड़ीं। उनकी एक फौज ने एक जीती-जागती भिड़ को पकड़ लिया। दर्जनों की तादाद में उसके पैरों, बाजुओं, पेट और सिर में चिमट गयीं और फिर वे उसे घसीटकर ले चलीं। भिड़ फडफ़ड़ाती थी लेकिन उसके बाजू और पाँव उस निर्दयी फौज के सामने बेकार थे। अगर वह तड़पकर अपने जिस्म का कोई हिस्सा छुड़ा लेती थी तो फिर उस जगह एक की बजाय चार चीटियाँ चिमट जातीं। चीटियाँ भिड़ को जबरदस्ती लिये जा रही थी। खींचे लिए जा रही थीं।

मोमिना जब अपनी कहानी को मन-ही-मन दोहरा रही थी, उसकी नज़र भिड़ और चीटियों पर जमी हुई थी। अपनी दास्तान के खात्मे पर पहुँचते ही उसे खयाल आया कि एक चींटी काट ले तो कितनी तकलीफ होती है, फिर उस बेचारी भिड़ का क्या हाल होगा, बेरहम चीटियों! किसी बेदर्दी से एक जिन्दा जिस्म को खा रही हो। क्या अनाज के दाने तुमको मयस्सर नहीं होते? इस बेचारी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा भा कि एक जान पर हजारों टूट पड़ी हो। हो सकता है कि इस भिड़ के बच्चे हों और इसके न होने से भूखे प्यासे मर जाएँ।

मोमिना ने एक तिनका उठाकर उससे चीटियों को भगा दिया लेकिन भिड़ इतनी घायल हो चुकी थी कि वह आजाद तो हो गयी, पर उड़ न सकी।

अफसोस! अपाहित कर दिया इस बेचारी को। अब जिएगी भी तो सिसक-सिसक कर। इससे तो अच्छा होता अगर चीटियाँ उसे एक ही बार में निगल जातीं।

मोमिना ने एक पत्ते से भिड़ को उठाकर पेड़ पर बैठा दिया कि वह वहाँ सुरक्षित रहे। जब अच्छी हो जाएँ अपने छत्ते में चली जाएँ नहीं तो आराम से मर जाएँ।

सलवार सूख चुकी थी। दु:खी भिड़ को बचाने की खुशी के अलावा मोमिना को एक खुशी और भी हुई। वह यह कि रात बारिश में भीगने की वजह से उसके गन्दे कपड़े, गन्दा जिस्म और गंदा सिर—सब साफ हो गये थे, बस कंघी की कसर रह गयी थी।

मोमिना का ध्यान गाँव की ओर लगा हुआ था। इतनी देर हो चुकी थी, आबादी की कोई निशानी नज़र नहीं आती थी। न कोई आदमी आता-जाता दिखाई देता था। न बच्चे खेलने निकले थे और न खेतों से किसी ने किसी को पुकारा था। गाँव वाकई उजाड़ और खाली था।

मोहिना पगडण्डी-पगडण्डी जा रही थी, लेकिन बहुत चौकन्ना हो ऊपर कान लगाये हुए, पत्ते-पत्ते कि हरकत को भाँपती हुई। पगडंडी ने ज़रा-सा चक्कर देकर दूसरी ओर से गाँव में पहुँचा दिया। गाँव वास्तव में बिलकुल खाली था। हर तरफ आग की कारस्तानियाँ और तबाही नज़र आ रही थी। यह भी नज़र आ रहा था कि बारिश ने आकर कोयले को राख होने से बचा लिया है। छतें ढेर थीं, किवाड़ कोयला बनकर मकान के सामने आ रहे थे। घरों के अन्दर न कोई खटिया थी, न बर्तन और न किसी प्रकार का सामान। या तो कोयल था या फिर मिट्टी के ठीकरे जो हर घर के अन्दर और बाहर प्राय: नज़र आते थे।

मोमिना आगे बढ़ी तो हलवाई की दुकान नज़र आयी। उसका खौंचा सजाने वाला चबूतरा शेष रह गया था। यहाँ मोमिना की नज़र एक ऐसी चीज पर पड़ी कि वह ठिठककर रह गयी। ध्यान से देखने लगी। वह वाक्य था चबूतरे की दीवार पर कोयले से 'अल्लाहो अकबर' लिखा हुआ था जो बारिश से आड़ में होने की वजह से धुँधला—बाकी रह गया था। भड़भूजे का भाड़ मिला। यहाँ भी दीवार पर 'अल्लाहो अकबर' लिखा नज़र आया। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि यह गाँव मुसलमानों का था और आग ने उनको भगा दिया? लेकिन ऐसा क्योंकर हो सकता है? देखो उन खेतों को जो लहलहा रहे है। भला उनको छोडक़र वो लोग कहीं दूर जा सकते हैं किन्तु यदि आसपास होते तो खेतों में तो नज़र आते। फिर क्या हुआ?

मोमिना को 'अल्लाहो अकबर' देखकर गाँव से एक लगाव-सा महसूस होने लगा। जैसे वतन से बहुत दूर, वीराने में उसे एक अपना मिल गया। यहा गाँव वीरान होने पर भी आबाद महसूस हो रहा है और जी तड़प-तड़प कर कह रहा था कि मोमिना उसके दरो-दीवार से लिपट-लिपट कर अपनी वह राम-कहानी सुना दे जिसको सुनने वाला कोई मौजूद नहीं है और यह पहाड़-सा बोझ उससे बँटा ले।

गाँव! मोमिना को सहसा अपना गाँव याद आ गया। जिस दिन मैं हसरत के साथ इससे विदा हो रही थी! कितनी वीरानी थी उसकी आबादी में! हर चेहरा अनजबी, हर आँख नफरत से भरी, हर मकान अपने मकानों की याद में में गमगीन। रहीम दर्जी की दुकान पर न वह था, न उसका लडक़ा, न मशीन,

न कपड़े। एक अजनबी बैठा हुआ मोटे डंडे से भाँग घोंट रहा था। डंडे में बँधे घुँघरू छन-छन बोल रहे थे और वह उसकी गति पर झूम-झूम कर ताने उड़ा रहा था। मुरादी के दरवाजे पर जो मैदान था, जहाँ कल तक वह और उसके बेटे दौड़-दौड़ के लच्छे सुलझाते थे और ताना तानते थे और फिर थान बेलते थे, जिसमें ऐसे फूल डालते थे कि बस बैठे देखा करो, वहाँ अब मैली गन्दी औरतें सिर झाड़ मुँह फाड़ बैठी जुएँ देख रही थीं। सिर धो रही थीं और सबके सामने नहा रही थी और बच्चों को दूध पिला रही थीं। ड्योढ़ी में औरतों से ज़रा आड़ में एक जवान मुग्दर की जोड़ी हिला रहा था।

मुरादी के मिट्ठू मियाँ पेड़ से लटके हुए अपने खाने की कटोरी बजा रहे थे और बीबी जी—बीबी जी की रट लगा रखी थी। एक लड़की कुछ देने आयी तो मिट्ठू मियाँ ने ताल लगायी। 'नबी जी भेजो।' यह सुनते ही लड़की ने हाथ रोक लिया और एक सत्तर-अस्सी बरस की बुढ़िया ने दूर से चिल्लाकर कहा, "अरी छोकरी! तू किसका पेट पाल रही है। देखती नहीं है कि यह माटी-मिला गैरजात है। मार डाल इसे?"

लड़की ने पिंजरा उठाकर पटक दिया। लेकिन मिट्ठू मरा नहीं है—है करने लगा। इसमें शिकायत थी कि आज तक किसी ने सिवाय मिट्ठू मियाँ, मिट्ठू मियाँ कहने के मेरे साथ बुरा बर्ताव नहीं किया। तुम लोग यह क्या कर रहे हो।

जहाँ पिंजरा लटका था वह जगह मुग्दर हिलाने वाले जवान के सामने थी और वह यह सब-कुछ देख रहा था। उसने बाहर आकर लड़की से कहा, "वाह री छोकरी, मुट्ठी-भर का मिट्ठू तुझसे नहीं मरा।"

पहलवान ने रूमाल हाथ पर लपेटकर पिंजरे में हाथ डाला और मिट्ठू मियाँ की गर्दन मरोड़कर पिंजरे के बाहर फेंक दिया। फिर खुद जाकर पहले की तरह मुग्दर हिलाने लगा।

पिंजरे के पट खुले थे और वह भायें-भायें कर रहा था। उससे ज़रा ही दूरी पर तोता पड़ा था जिसकी सुर्ख चोंच गर्दन टूट जाने के कारण हरे परों के बीच में आ गयी थी। मिट्ठू मियाँ नबी जी भेजो, नबी जी भेजो की रट लगाने वाली जबान सदा के लिए चुप हो चुकी थी।

शाही युग की शानदार मस्जिद जिसे दूर-दूर से लोग देखने आते थे, उसकी कटावदार मेहराब को बेलचों से तोड़कर वहाँ गेरू से मूरत बना दी गयी थी और एक घण्टा लटका दिया गया था। अब वह मन्दिर था, जहाँ एक पुजारी भी बैठा हुआ था। अपने घर की हालत! उफ! याद करके कलेजा फटता है।

मोमिना ख़यालों में डूबी हुई शिवाले तक आ गयी। यहाँ एक चीज बिलकुल उम्मीद के खिलाफ नज़र आयी।

उसके कलस से एक जानवर का सिर लटक रहा था, जिसकी आँखें और गोश्त कौवे निकालकर खा गये थे और खाल बिगड़ चुकी थी, किन्तु सींग और चेहरा बता रहे थे कि गाय का सिर है। शिवाले के अन्दर शिव का स्थान तोड़-फोड़ डाला था और कोयले से मेहराब बनाकर 'अल्लाहो अकबर' लिख दिया गया था।

मोमिना ने उधर मस्जिद को देखा और इधर उसकी नाक में इतनी सख्त सड़ाँघ आयी कि जी मचलने लगा, लेकिन यह देखकर उसके दिल को कुछ सुकून हुआ कि दुनिया में एक जगह तो ऐसी निकली जहाँ मस्जिद ने मन्दिर पर फतह पायी है। हो न हो यह जगह पाकिस्तान है। खुदा चाहेगा तो यहाँ ऐसे-ऐसे नजारे और बहुत देखने में आएँगे।

मोमिना दोनों वृक्षों के नीचे खड़ी उस मकान को देख रही थी जो दूर से उसे अपने घर से मिलता-जुलता नज़र आया था। उसके घर की तरह उसमें भी बाहर बैठक और बगल में अहाता था। जिसमें बराबर-बराबर बहुत-सी नाँदें लगी हुई उन सिरों को याद कर रही थी जो उनसे घंटों कानाफूसी करते रहते थे। यहाँ भी अहाते के अन्दर और बाहर मिट्टी के बर्तनों के ठीकरे बिखरे पड़े थे। बैठक के सामने तीनों दरवाजे और एक वह दरवाजा जो बैठक के अन्दर घर में खुलता था, ये सब पाटो-पाट खुले थे। घर के अन्दर का बहुत-सा भाग नज़र आ रहा था। बैठक के बाद दालान था फिर बहुत-बड़ा सेहन फिर खपरैल जो जलकर नीचे ढेर हो चुकी थी। उसके पीछे एक और दालान और वह भी आग का शिकार हो चुका था।

यह बैठक देखकर मोमिना को अपने घर की बैठक याद आ गयी। वह भी इसी तरह फाटक के बगल में थी। वहाँ जाड़ों में रात गये तक ताश और शतरंज होती रहती थी और कहकहे गूँजा करते थे। कभी-कभी कोई ताने भी मारने लगता था। ग्रामोफोन का चस्का लग जाता था तो रोज वही बजा करता था। वही गिनती के कुछ रिकार्ड थे, सुनने वाले रोज सुनते थे। दिन में दो-दो, तीन-तीन बार। कभी-कभी तो दिन-दिन भर सुनते थे। मोमिना सोचने लगी, क्या इस बैठक में भी यही हुआ करता होगा। इस सवाल में और उस याद में कुछ इतना जोर था कि वह मोमिला को ढकेल कर बैठक के अन्दर ले गया। यहाँ पहुँचते ही उसकी निगाह एक ऐसी चीज पर पड़ गयी जिसके लिए सुबह से उसका जोड़-जोड़ बिलख रहा था। बैठक के अन्दर कुछ चने इस प्रकार बिखरे पड़े थे जैसे फूहड़पन से रखने-उठाने से अनाज बिखर जाता है, लेकिन बारिश की बौछार और नमी से उनमें अखुए फूट आये थे। मामिना उन चनों पर ऐसे टूट पड़ी जैसे भूखी मुर्गियाँ दाने पर गिरती हैं। वह उनको चुन-चुनकर खाने लगी। खाती जाती थी और सोचती जाती थी कि अखुआ फूटे चने भी मजे के होते हैं। न नमक, न मिर्च किन्तु कैसे सौंधे मालूम हो रहे हैं। सच है कि भूख में हर चीज मजा देती है। चने खाते-खाते मोमिना की नज़र

बैठक और घर के बीच के दरवाजे पर पड़ी और कुछ देखकर उछल पड़ी। एक कुतिया खड़ी बहुत ध्यान से मोमिना की ओर देख रही थी। मोमिना पहले तो डरी कि कहीं यह मुझ पर हमला न कर दे, किन्तु उसकी आँखों में $ख़ूँख्वारी न पाकर चुमकारा। फिर तो कुतिया कूँ-कूँ करती हुई दौड़ी और मोमिना के पाँव पर लोटने लगी और उस पर प्रेम न्योछावर करने लगी। उसकी बेताब मुहब्बत देखकर मोमिना को सुरूर-सा लगा। ओफ्फो, कितने दिनों के बाद मुहब्बत मिली है। उसने कुतिया को चिमटा लिया। जैसे बहुत दिनों के बिछुड़े हुए अचानक मिल गये हैं। चिमटाने के बाद मोमिना को ख़याल आया कि कुत्ता नापाक होता है।

अब प्यार हो चुका तो कुतिया अन्दर भाग गयी। दम-भर में वापस आकर मोमिना के कदमों पर लोटने लगी और फिर अन्दर भाग गयी। फिर बाहर आकर कदमों पर लोटने लगी। मोमिना समझ गयी कि यह मुझे अन्दर ले जाना चाहती है। वह उसी मकान में रात बसर करना चाहती थी। इसलिए उसका कुछ इरादा हो रहा था कि अन्दर का एक जायजा ले लूँ। कुतिया के कुलाबा देने से वह निडर हो गयी और उसके पीछे-पीछे अन्दर चली। मकान सादा बना हुआ था। बैठक के पीछे दालान था और बगल में एक छोटा-सा कमरा। मकान का सामने का हिस्सा तो जल गया था, पर आग सेहन पार करके उस तरफ नहीं आयी थी। यह हवा की मेहरबानी हो या बारिश की।

कुतिया कमरे की तरफ मुड़ी। मोमिना ने जसे ही उधर देखा उसका दिल धक-से रह गया और मुँह से चीख निकलते-निकलते रह गयी, लेकिन उसने फौरन ही अपने को सँभाल लिया। डर की कोई बात ना थी उसके सामने सिर्फ एक छोटा-सा दुबला पतला हकीर-सा, नंगा मादरजात लडक़ा था।

लडक़े का एक पहलू, एक बाजू सीना और सिर पर शायद दोनों आँखें आग ने चाट ली थीं। जख्मों से पानी बह रहा था और उन पर मक्खियों के झुंड भिनक रहे थे जिनको लडक़ा कराह-कराह कर कमज़ोर हाथों से उड़ा रहा था।

लडक़ा पतनाले के नीचे-वाले गड्ढे को टटोल रहा था। शायद पानी की तलाश में था। जब वह नहीं मिला तो उसके मुँह से "हाय! माँ" निकल गया और फिर वह हाथों और कूल्हे के बल घिसटता हुआ कमरे के अन्दर गया और ज़मीन पर करवट से लेट गया। उस लडक़े के अलावा घर में कोई इनसान न था। और न किसी किस्म का साजो-सामान। यहाँ तक कि पीने के पानी के लिए एक बर्तन भी न था।

कुतिया जोश में लडक़े के पाँव चाटने लगी।

लडक़ा कराह कर बोला, "क्या बात है आशा, तू भी भूखी प्यासी हो गयी।"

मोमिना के दिल में डर की जगह दया ने ले ली। और फिर दया, "हाय माँ" सुनकर ममता बन गयी। हाय यह नन्हा-सा अपाहिज बच्चा इस अँधेरी नगरी में बिलकुल अकेला है, बेचारा। आशा

बेज़बान के सिवा कोई पूछनेवाला तक नहीं। कोई दो बूँद पानी देने वाला तक नहीं। बेचारा पतनाले के नीचे गड्ढे में पानी ढूँढ़ रहा था। एक बूँद भी न मिला।

मोमिना की आँखें ममता से नम हो गयीं और वह दबे पाँव ज़रा और करीब चली गयी। आशा खुशी से उछलने लगी।

लड़के ने कराह कर कहा, "हे राम!"

'हे राम' सुनते ही ममता पर बिजली गिर गयी और उसने आग की लपट बनकर मोमिना के तन-बदन को फूँक दिया।

यह मुसलमान नहीं, फिर तो यकीनन इस पर खुदा का कहर टूटा है। उन कमबख्तों ने किस बेदर्दी से मेरी हँसती खेलती लाड़ली को उठाकर पटका है और उसका कहकहा लगाया है। हाय, उन बेचारों को जिन्दा कुएँ में अपने बेटे की लाशों से दबा दिया जाना। उफ्! न जाने कितने दिनों में जान निकली होगी। मेरे प्यारे शम्स और मेहताब। उनका चीख मारकर 'अम्मा' पुकारना। बदनसीब महरून खुदा जाने ज़िन्दा भी है और अगर ज़िन्दा है तो उसकी कैसी कट रही है? हाय! कैसे-कैसे दाग हैं मेरे दिल पर। ये जालिम पापी तो इसी काबिल हैं कि उनका एक-एक बज्जा इसी तरह सिसका-सिसका कर मारा जाएँ और मरते वक्त भी एक बूँद पानी न दिया जाएँ। मोमिना ने थोड़ी देर लड़के के कराहने और तड़पने का सुकूनबख्श नज़ारा देखा और फिर वह जिस दबे पाँव आयी थी उसी तरह दबे पाँव बाहर चली। उसके मुँह मोड़ते ही फिर बदबू का एक झोंका आया जिससे उसकी रूह तिलमिला गयी।

बज्जे की अकेली उम्मीद आशा, मोमिना की ओर हसरत से देखने लगी और उसके कदमों पर लोटने लगी, लेकिन मोमिना के लौटते हुए कदमों में ब्रेक न लगा सकी।

बैठक में आकर मोमिना चने समेटकर आँचल में भरने लगी। उस समय उसकी नज़र एक ऊँची ताक पर पड़ी जिसमें सूँडवाले देवता की मूर्ति रखी हुई थी। इसका मतलब है कि यह घर किसी मुसलमान का नहीं है। ऐसे घर में पनाह लेने से उस पेड़ के नीचे ज़िन्दगी काटना लाख दर्जे अच्छा है जहाँ मेरी भिड़ रहती है।

धूप की तेजी जा चुकी थी। आसमान पर बादलों के बड़े-बड़े सफेद टुकड़े सुकून से एक तरफ से दूसरी तरफ जा रहे थे। खुशगवार हवा के धीमे-धीमे झोंके थके हुए बदन को सहला रहे थे। पेड़ के नीचे गोगाइयाँ शोर मचा रही थीं और आपस में आँख मिचौली खेल रही थीं। मोमिना अपने पेड़ से कुछ दूर एक तलिया के पास बैठ अँखुआ फूटे चनों को धो-धोकर खा रही थी, गोगाइयों के बचकाने शोर से आनन्द ले रही थी। उसके दिल में आज कितने दिनों के बाद खुशी की मौजें उठ रही थीं। मोमिना दिल में कह रही थी, देख शक भरे दिल देख। खुदा के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं। देख सामने का गाँव जिस

तरह जलकर खंडहर बन गया है और इसके बसने वालों को देश निकाला मिला है। एक बज्जा जो सबके पापों को भोगने के लिए रह गया है किस तरह सिसक-सिसक कर मर रहा है। यह खुदा का कहर नहीं तो और क्या है? उसकी लाठी में आवाज़ नहीं। किस जबान से तेरा शुक्र अदा करूँ, ओ करम करने वाले, तूने मुझ दुखियारी के शौहर और बज्जों की आहों को यूँ ही नहीं जाने दिया।

मोमिना क्योंकि चने खा रही थी और अपनी कल्पना की आँखों से सिसकते हुए बज्जे का तड़पना, एड़ियाँ रगड़ना और उसके मृत्यु-कष्ट भोगते हुए आँखों-आँखों से दरो-दीवार से पानी माँगना, देख रही थी। क्यों रे काफिर, अब महसूस किया तूने कि मेरी लाड़ली की जान किस तरह निकली होगी। अब जाना कि कत्ल करना और वह भी बज्जों को माँ के सामने और शौहर को बीवी के सामने। बलात्कार करना और वह भी बेटी के सामने, ये कैसे पाप हैं और इस दुनिया का पालनहार इसकी सजा कैसी भयानक देता है।

इस दृश्य से मोमिना को कुछ ऐसा मजा आ रहा था कि कई बार यही कल्पना करने के बावजूद जी नहीं भरा था बल्कि जी में तो ये मौजें उठ रही थीं कि काश इसी कल्पना में सारी ज़िन्दगी बीत जाएँ। जालिम आसमान तू ज़रा देर भी किसी को हँसते-खेलते नहीं देख सकता है। मोमिना उन खयालों से आनन्द ले रही थी कि वह चारों तरफ से घिर आया। कड़क और गरज से उसने दुनिया को भर दिया। मोमिना के ख़यालों की उड़ान रुक गयी। वह सोचने लगी कि मैं कहाँ जाऊँ ताकि रात बिन भीगे कट जाएँ। एक रात भीग चुकने के बाद अब उसमें फिर इस मुसीबत के झेलने की बिलकुल हिम्मत न थी। दूसरी ओर उसे महरून याद आने लगी थी। खुदा जाने किस हाल में हो और कैसे जालिमों से वास्ता पड़ा हो? हो सकता है कि वह बीमार हो गयी हो और उसके दुश्मनों ने भी उसके साथ वही सुलूक किया हो जो कनीज के साथ किया कि वह बहुत बीमार हो गयीं तो उसे कहीं फिकवा दिया। हो सकता है कि महरून इस हालत में हो और उसकी मदद कर सकूँ। मोमिना इन खयालों को ड्रामे के रूप में देखने लगी कि महरून बीमार है। बेघर है कि एकाएक मैं पहुँच जाती हूँ और उसकी मदद करती हूँ। वह सोचने लगी कि मेरी जान महरून के लिए बहुत कीमती है इसलिए इसकी हिफाजत जरूरी है।

साथ-साथ एक बात और भी वह यह कि वह डर रही थी। थी तो वह बहादुर और बहादुर बाप-दादा की औलाद। एक बार चोरों को भी भगा चुकी थी लेकिन दिल मजबूत होने पर भी मुलायम किनारे रखती थी और इस वक्त छोटे-छोटे बहुत-से भय उसे घेरे हुए थे। डर, जंगल का डर, जानवरों का डर, साँप-बिच्छू का डर, चोरों-डाकुओं का डर, शरणार्थियों का डर। भीग कर बीमार होने और फिर एकान्त में एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरने का डर। ये सब डर महरून के लिए जिन्दा रहने की इच्छा में गड्डमड्ड होकर एक घबराहट में बदल गये थे कि क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?

मोमिना ने फैसला कर लिया कि क्या करना चाहिए। यह फैसला उसने किसी तर्क से नहीं किया बल्कि उसी तरह किया जैसे उसने कलूटे के घर से निकल भागने का निर्णय किया था। यानी दोनों दिशाओं में से जो दिशा जज्बात के लिए अधिक आकर्षणपूर्ण होती है वह मोमिना को खींचे ले गयी।

मोमिना पगडंडी छोड़कर खेतों-खेतों होती हुई आशा के घर की ओर चली। वहाँ छत थी जो बारिश को रोकेगी। दरवाजे थे जो बन्द हो जाएँगे। आशा थी जो वक्त पड़ने पर ज़रूर काम आएगी। फिर यह बात भी है कि जब दुश्मनों ने मेरे बाप-दादा के घर पर क़ब्ज़ा कर लिया है तो मे। क्यों न उनके घर पर कब्जा कर लूँ। जरूर करूँगी। आशा का घर मेरा घर ही है। हाँ, मेरा घर।

मोमिना अपने घर पहुँच गयी। बैठक में जाकर उसने जल्दी-जल्दी सब दरवाजे बन्द कर लिये। अब वह रात के आक्रमणकारियों से भी सुरक्षित थी और आशा की नज़रों से भी। वह आशा से और आशा उससे प्रेम करती थी। फिर भी मोमिना आशा की नज़रों से डरती थी।

मोमिना खैरियत से अपने घर पहुँच गयी। अपना घर। हाँ, अब यह अपना घर तो है ही। मैं यहाँ की घरवाली हूँ। महरून आएगी तो उसे भी यहीं रखूँगी। बैठक, दालान और कमरे को मैं साफ कर लूँगी। जीवन-यापन का कोई-न-कोई साधन हो ही जाएगा। यदि मुझे कोई यहाँ से निकालेगा भी तो मैं नहीं निकलूँगी। कहूँगी कि पहले तुम मेरा मकान मुझे दिला दो, तब इसे माँगना। किसी को क्या हक था मेरे बाप-दादा के घर को मुझे छीन लेने का।

रात हो गयी। सियार हूवा-हूवा पुकारने लगे। थोड़ी रात बीती थी कि उनके साथ दूसरे जानवरों की चीखें भी शामिल हो गयीं। मोमिना के दिमाग पर सिनेमा के पर्दे की तरह भयानक दृश्य अवतरित हो रहे थे। कभी वह यह देखती कि मैं अपने मकान में हूँ और अब्बा मियाँ घबराये हुए अन्दर आ रहे हैं और हमला हो रहा है। और मेरी लाड़ली मारी जा रही है। कभी यह कि मैं अपने नए मकान में हूँ और मुजाहिदीन का हमला हो रहा है। जले हुए लड़के के दादा ने घर को चारों ओर से बन्द करके मुकाबला करना चाहा किन्तु मुजाहिदों के जोश और नारों के सामने वे शिकस्त खा गये और मुजाहिदीन अन्दर घुस आये और दरवाजे पर उन्होंने लड़के के दादा को मारा। फिर मोमिना को ऐसा महसूस हुआ कि मैं खुद भी आक्रमणकारियों के साथ हूँ। मुजाहिदों ने औरतों को खींच-खींच कर घर से बाहर निकाला, लड़के की दूध-पीती बहन को माँ की गोद से छीनकर पटक दिया। फिर उसकी बहन और माँ के साथ बलात्कार...

मोमिना स्वप्न में भी यही सब-कुछ देखती रही। एक बार उसने देखा कि लाड़ली पटक देने से मरी नहीं बल्कि एक सूने कमरे में पड़ी सिसक रही है और कोई उसे दो बूँद पानी तक नहीं देता है। एक बार स्वप्न में उसकी आँखें आशा की आँखों से मिल गयीं। यह देखकर उसका दिल दुःख से भर गया

कि आशा की पलकों के नीचे में शम्स की आँखें हैं। ओफ्फो, वह किस हसरत से मेरी ओर ताक रही है!! हाय मैं इसे जालिमों से कैसे छुड़ाऊँ? वह देखो, शम्स की आँखें प्यासी हैं और दो बूँद पानी के लिए तड़प रही हैं।

फिर मोमिना को ऐसा नज़र आया कि महरून भागी चली आ रही है और उसके पीछे बहुत-से लोग पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं। महरून चिल्ला रही है—'बचाओ, बचाओ' किन्तु कोई मदद को नहीं आता। भागते-भागते महरून बैठक के दरवाजे पर आ गयी और गिड़गिड़ाने लगी "अम्मा दरवाजा खोल दो। अम्मा, अम्मा मेरी अम्मा! मुझे अन्दर ले लो। अम्मा जल्दी करो नहीं तो वे लोग आ जाएँगे। अम्मा, मेरी अम्मा, खुदा के लिए...!"

मोमिना के हाथ और पाँव और जबान से जैसे किसी ने जान निकाल ली है। उनमें कोई सत नहीं। न वह हिल सकती है, न बोल सकती है। बड़ी बेबसी की हालत में महरून की आवाज़ सुनती रही।

कुछ देर बाद जब मोमिना चेतना में आयी तो उसे पता चला कि बाहर के दरवाजे पर महरून नहीं, आशा है जो चौखट से अपना सिर रगड़ रही है और प्रार्थनाएँ कर रही है कि मरते हुए बच्चे के गले में दो बूँद पानी टपका दो। साथ-साथ मकान के अन्दर से कराहने की आवाज़ आ रही है। माँ! हे माँ माँ...पानी...एक बूँद पानी। हे राम! हे माँ, माँ! मैं चला एक बूँद...हाय माँ तुम कहाँ हो माँ!"

किवाड़ों की दराजों से चाँद की मीठी किरणें आ रही थीं और हवा के खुशगवार झोंके भी। यानी घटा छिट चुकी

थी और अब आसमान साफ था। मोमिना ने किवाड़ खोला और उसके खुलते ही आशा अन्दर आकर मोमिना के पाँव पर लोटने लगी। प्रार्थनाएँ करने लगी। उसकी लोटने में इल्तिजा थी। उसके लेटकर दोनों हाथों को उसकी ओर फैलाने में इल्तिजा थी, उसकी भिखमंगी नज़रों में खुशामद थी।

मोमिना ने चुमकाकर आशा को अपने साथ लिया और मिट्टी के बर्तन का एक बड़ा-सा टुकड़ा लेकर तलैया तक गयी। उसके पानी में उस समय चाँद-सितारों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। जब मोमिन झुककर पानी भरने लगी तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि मैं उस कत्ले-खून की दुनिया से निकलकर ऐसी दुनिया में आ गयी हूँ जहाँ ऊपर भी चाँद-सितारे हैं नीचे भी चाँद-सितारे।

मोमिना पानी लेकर ऐसी सावधानी से वापस चली कि उसने जो कुछ टूटे बर्तन में चाँद-सितारों की छाँव में भर लिया है, वह छलक न जाए। उसके आगे आशा थी। घर आते ही वह मोमिना से पहले लड़के के पास पहुँचकर खुशी से भौंकने और उछलने लगी और लड़के के पाँव चाटने लगी।

"क्या बात है आशा? क्यों इतनी खुश है?"

"हाय माँ!" मोमिना ने निकट जाकर पुकारा, "बेटा!"

बज्जे ने नहीं सुना। मोमिना समझ गयी कि आग ने जहाँ उसकी आँखें जला दी हैं, वहाँ कान भी खराब कर दिये हैं। अब की उसने जोर से पुकारा, बेटा!"

लड़का उछल पड़ा और अपनी खाली आँखों से इधर-उधर देखने लगा। मोमिना ने ढाढ़स देने वाली आवाज़ में पुकारा, "बेटा!"

"कौन?"

उसकी आवाज़ में डर भी था और आश्चर्य भी। मोमिना ने और पास आकर कहा, "बेटा!"

बज्जा फिर उछल पड़ा। काँपती हुई आवाज़ से बोला, "कौन? माँ!"

"हाँ, बेटा!"

"माँ!"

"हाँ, हाँ बेटा मैं हूँ।"

"माँ! तुम!"

"हाँ, हाँ बेटा! मैं हूँ? माँ!"

मोमिना ने लड़के का सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया।

"बेटा!"

"माँ! क्या तुम उस दुष्ट से बचकर आयी?"

"हाँ बेटा, मैं भाग आयी।"

"माँ...माँ...माँ...माँ...माँ..."

बज्जा मोमिना के गले में बाहें डालकर फूट-फूटकर रोने लगा।

मोमिना की आँखों से जो पति और बच्चों की मौत के दिन से लेकर आज तक आँसू की एक बूँद को तरसती रही थी, झरना फूट निकला। वह आँचल से बज्जे का घाव बचाकर उसके आँसू पोंछती और फिर अपने। जब ज़रा दिल हलका हो गया तो मोमिना बज्जे का ढाढ़स देने लगी।

"बेटा अब न रो। अब तो मैं आ गयी हूँ।"

लड़का हिचकियाँ लेते हुए कहने लगा, "माँ! पानी!"

"लो बेटा!"

मोमिना लड़के को गोद में बैठाकर पानी पिलाने लगी और वह उस पर टूट पड़ा। उस समय मोमिना को आभास हुआ कि लड़के को बहुत तेज बुखार है। जब पानी पी चुका तो कहने लगा, "माँ!"

"हाँ, बेटा!"

"अन्धा हो गया हूँ और शायद बहरा भी। किसी बात की खबर नहीं होती। माँ मेरा अब क्या होगा? बज्जा फिर रोने लगा। "

मोमिना की आँखों में भी आँसू आ गये। वह समझाकर कहने लगी, "बेटा, घबराओ नहीं, अच्छे हो जाओगे। "

मोमिना ने बज्जे के माथे पर प्यार किया।

बज्जा रूठकर बोला, माँ, तुम मुझे रामू क्यों नहीं कहतीं?"

"कहती तो हूँ रामू, रामू बेटा...मेरा प्यारा रामू!" "तुम्हारी आवाज़ और तुम्हारी बातें कुछ बदली मालूम होती है। मैं जल गया हूँ इस कारण से शायद ऐसा मालूम होता होगा, क्यों माँ?"

अन्तिम वाक्य में बज्जे ने जो प्रश्न किया था उसका सम्बोधन मोमिना से इतना नहीं था जितना उसके अपने दिल से।

"बेटा मैंने बहुत कष्ट झेले हैं। "

"हाय माँ...तुमको दुश्मनों ने बहुत दुःख पहुँचाया? क्या मारा?"
जलाया तो नहीं?

"बेटा अब इन बातों को...न याद दिलाओ। जब तुम अच्छे हो जाओगे तब मैं खुद बता दूँगी। "

"अच्छा माँ तुमको इन बातों को याद करके बहुत दुख होता होगा। हाय माँ, तुम ने अभी यहाँ जले पर हाथ रख दिया था तो जान निकल गयी। "

"चिच-चिच, मेरा प्यारा रामू अब मैं खयाल रखूँगी, घबराओ नहीं। मैं आ गयी हूँ। अब तू अच्छा हो जाएगा। "

आशा निरन्तर उन दोनों के गिर्द खुशी से नाच रही थी। रामू के कान में उसकी आवाज़ की भनक पहुँची तो बोला, "माँ, आशा को भी प्यार कर लो, मेरी बड़ी खबर ली है। मुझे बचाया है। "

मोमिना ने आशा को चिमटा लिया और कहने लगी, "आशा, तूने मेरे बज्जे की सुरक्षा की है। तू मेरी बेटी के बराबर है। "

आशा अपनी तारीफ़ सुनकर इतराने लगी।

"मुसलमानों से तो यह कुतिया अच्छी है। इसके दिल में दया तो है। " रामू बोला। "

मोमिना के दिल पर एक बर्छी लगी, किन्तु वह सहन करके बोली, हाँ बेटा!

रामू माँ की गोद में खिसककर लेट गया। कुछ देर चुप रहकर बोला, माँ!

"हाँ रामू!"

"मेरी आँखें अच्छी हो जाएँगी।"

हाँ, बेटा! "जरूर अच्छी हो जाएँगी।"

"और कान?"

"वह भी।"

शमू खुश होकर माँ के गले में बाहें डालकर बोला,—माँ मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं अच्छा हो जाऊँगा।"

"हाँ, मेरे चाँद, अल्लाह ने चाहा तो जल्द ही अच्छा हो जाएगा।"

शमू ऐसे चौंक पड़ा जैसे उसको गोली लग गयी। उसने अपनी बाँह खींच ली और मोमिना की गोद से सिर उठाकर बोला, "माँ!"

मोमिना घबराकर बोली, "क्या बात है शमू...क्या हुआ?"

"तुम...?"

"हाँ बेटा! कहो ना।"

"तुम अल्लाह कहती हो।"

बज्जा बहुत सहमा हुआ था और अपनी खाली आँखों से मोमिना का चेहरा देख रहा था मानो डर रहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह मेरी माँ न हो, बल्कि कोई मुसलमान हो। मोमिना के दिल पर यह दूसरी बर्छी लगी किन्तु उसने फिर हसन करके शमू का सिर अपनी गोद में खींच लिया। उसके हाथ अपने गले में डाल लिये और बोली, "बेटा, मुझे इतने दिनों मुसलमानों में जो रहना पड़ा है।"

शमू ने कुछ सोचा और फिर कहने लगा, "वो लोग तुमसे जबरदस्ती अल्लाह, अल्लाह कहलवाते होंगे। उसके लिए मारते होंगे।"

यह बात शमू ने प्रश्न के रूप में नहीं अपनी इत्मीनान दिलाने के लिए कही थी और वह सन्तुष्ट भी हो गया था। उसके समीप मुसलमानों के जुल्म हर परिवर्तन को सम्भव बना सकते थे।

"हाँ बेटा! किन्तु अब उन बातों को न पूछो।"

"माँ, जब मैं 'अल्लाहो अकबर' की उन पुकारों को याद करता हूँ तो..."

बज्जा सहमने लगा और उसके गले में फाँसी-सी लगने लगी। मोमिना ने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा, "तुम भी इन बातों को भूल जाओ।"

शमू कुछ देर सोचता रहा, फिर हिचकिचाते हुए बोला, "माँ!"

"शमू!"

"सच बताओ। तुम मेरी माँ हो?"

"और कौन तुझे इस प्रकार प्यार कर सकता है बेटा!"

"सच है। जाने क्या बात है। मुझे शक होता है।"

"शक न करो बेटा!"

रामू फिर कुछ देर के बाद पूछने लगा, "कहीं यह स्वप्न तो नहीं?"

"नहीं बेटा!"

"ऐसा तो नहीं कि जब सुबह हो तो तुम न मिलो।"

बज्जे के दिल में वाकई डर पैदा हो चला था ओर उसने मोमिना को इस तरह टटोला कि कहीं वह वहम तो नहीं है।

"नहीं बेटा! ऐसा नहीं होगा। देख तेरी आशा भी तो मुझे देख रही है।"

रामू की बाँहें और अधिक मजबूती से मोमिना के गिर्द चिमट गयीं। माँ मेरा मन भी अन्दर से ही कह रहा है कि तुम मेरी माँ हो और अब सचमुच आ गयी हो। मुझे 'रामू-रामू' कहो।

रामू जख्मों को सँभालकर माँ की गोद में सिमट आया और फौरन अचेत हो गया। मोमिना को ऐसा आभास होने लगा मानो उस बज्जे को गोद में लेकर मेरे घाव हरे हो गये हैं, दिल है कि उमड़ा चला आ रहा है और बज्जे को कलेजे से लगाकर दहाड़ें मार-मारकर रोने को जी चाह रहा है। साथ-साथ यह भी आभास हो रहा है कि एक बेसहारा को सहारा देने से अपनी जिन्दगी बेसहारा न रहे।

वास्तव में मोमिना अपने जज़्बात समझने में बिलकुल असमर्थ थी। उस समय से असमर्थ थी जब से वह सोकर उठी है और सीधी बज्जे के पास चलती आयी। मेरे अन्दर आखिर क्या उलट-पुलट हो गया जो मैंने इस बज्जे से नफरत करते-करते कलेजे से लगा लिया। एक हिन्दू से इतनी मुहब्बत करना कोई बुरी बात तो नहीं? किन्तु अन्दर से इस बात का यकीन जरूर था कि मैंने जो कुछ किया है, ठीक किया है।

पौ फटी और सुबह की रोशनी हर तरफ फैलने लगी। मोमिना ने दुलारे रामू की तरफ देखा। उसका चेहरा कितना भोला और कितना प्यारा है। थोड़ी ठंडक हो रही थी इसलिए मोमिना ने रामू को अपना दुपट्टा दोहरा करके ओढ़ा दिया। हलकेघ्-से उसके माथे पर प्यार करके दिल में यह संकल्प कर लिया कि यह मेरा शम्स और मेहताब है और मैं इसको उसी प्रकार पालूँगी।

दिन चढ़े जब रामू की आँख खुली तो मोमिना ने अपना दुपट्टा तर करके उसका मुँह और बदन, जो जूठे बर्तनों की तरह घिनौने हो रहे थे, साफ किये। फिर जितना उससे हो सका और रामू सहन कर सका घावों को साफ किया और फिर किसी प्रकार की घृणा महसूस नहीं की। अपनी औलाद का गू-मूत करने में घृणा कैसी?

इन बातों से निपट कर रामू कहने लगा, जिस दिन गाँव लुटा है, मैं उस दिन का खाया हुआ हूँ। तबसे इस बरसाती पानी के अलावा तो पतनाले के नीचे गड्ढे में जमा हो जाता था, मेरे पेट में कुछ नहीं गया है। शायद छः दिन हुए मुझे खाना खाए? मोमिना ने कुछ खुश होकर पूछा, "तुम ने कैसे पहचाना कि छह दिन हुए? क्या इतना नज़र आता है?"

"रात को लाशों को खाने के लिए जो जानवर आते हैं, वे आपस में लड़ते हैं, चीखते हैं और शोर मचाते हैं। उनके आने से मालूम हो जाता है कि रात हो गयी और जाने से यह कि दिन हो गया?

मोमिना उसका हाल सुनकर काँप गयी।

रामू इतना भूखा था लेकिन इस पर भी उसे स्वीकार न था कि माँ पास से चली जाएँ। मोमिना उसे बहुत समझ-बुझाकर ढाढ़स देकर खाने की तलाश में निकली। बुखार में भुनते हुए छह दिन की भूख के मारे हुए बच्चे को चने देना तो उसे मौत के मुँह में झोंक देना है फिर और क्या किया जाएँ? आग तक तो मौजूद नहीं जो चनों को ठीकरें में उबाला जा सके। मोमिना को जो कुछ उम्मीद थी, एक आवाज़ से थी, जिसे वह कल कई बार सुन चुकी थी और आज सुबह फिर सुनी थी, उस समय उसने कुछ अन्दाजा कर लिया था कि वह किस तरफ से आ रही है। उस वक्त दरअसल वह उसी आवाज़ की तलाश में निकली थी। वह मिल जाएँ तो रामू के खाने का बल्कि खुद उसके खाने का भी प्रबन्ध हो जाएँ, शायद।

मोमिना अपने मकान के पिछवाड़े की ओर चली। उसे कुछ जले हुए घर मिले और उनसे निकलकर गाँव की हद आ गयी। गाँव छोटा-सा था सरहद पर पहुँचकर उसने भयानक दृश्य देखा और नाक में इतनी तेज सड़ाँध आयी कि वह सिर से पाँव तक काँप गयी। वह अपनी जगह स्तब्ध रह गयी। कुछ कच्चे घरों से मिला हुआ एक छूटा हुआ मैदान था, जिसमें जले हुए कुन्दे और जले हुए इनसानों के हाथ-पाँव, सिर और सीने के ढाँचे के ढेर थे। उनमें से कुछ तो मुर्दाख़ोर जानवरों के द्वारा बिलकुल साफ़ हो चुके थे और कुछ पर जले हुए गोश्त के रेशे लगे रह गये थे, जिनको उस समय कौवे, गिद्ध और आवारा कुत्ते बड़े चाव से साफ़ कर रहे थे। तीस-चालीस खोपड़ियाँ इधर-उधर बिखरी हुई अपनी आँखों के पलकों से मोमिना की ओर ताक रही थीं। उफ! उनमें जीने की कितनी हसरत थी।

मैदान दो तरफ से घरों से घिरा हुआ था। उनकी दीवारों पर कोयला रगड़-रगड़ कर बहुत स्पष्ट लिखा हुआ 'अल्लाह हो अकबर'। जाहिर था कि मुजाहिदीने इस्लाम ने अल्लाह की शान ऊँची करने के लिए यह सब किया था। मोमिना की नाक में रह-रहकर जो तेज सड़ाँध आती रही उसका कारण यही था। मोमिना ने इधर कुछ दिनों के अन्दर कत्लो-खून और आगजनी के इतने दृश्य देखे और सुने थे और अपने प्यारों को आँखों के सामने कत्ल होते देखा था कि वह तजुर्बेकार फ़ौजी की तरह लाशों को देखने की आदी-सी हो गयी थी, किन्तु इतना आदी होने पर भी उस दृश्य ने उसे दहला दिया।

मोमिना को एक कुआँ भी याद आ गया जिसमें उसके पति, बच्चों और सारे खानदान की लाशें थीं।

मोमिना अभी उस दृश्य की घबराहट से पूरी तरह निकल नहीं पायी थी कि उसने देखा कि आशा जो उसके पीछे-पीछे आयी थी एक रान को सूँघ रही थी। साथ-साथ जबान से चाट रही थी और भूँक-भूँक कर मोमिना की ओर देख रही थी—क्या आशा इनसानी कबाब खाने की इजाजत माँग रही है? आशा क्यों न खाये जब उनको सैकड़ों जानवरों और गिद्धों ने खाया है तो आशा क्यों न खाये? जब पेट-भरों ने खाया है तो छह दिन की भूखी आशा क्यों न खाये?

जब ईश्वर के पुजारी और इस्लामी मुजाहिद इनसानी जिस्म का अदब नहीं करते तो आशा क्यों करे। क्या आशा उनसे बुरी है?

आशा लाश को सूँघती रही और मोमिना से इजाजत माँगती रही, किन्तु जब उधर से कोई सुनवाई न हुई तो चाहते हुए भी मोमिना के पास आकर सवालिया नज़रों से देखने लगी, जैसे शिकायत कर रही थी जिस काम को सब कर रहे हैं उसको करने से तुम मुझे क्यों रोकती हो? यह कैसा जुल्म है?

मोमिना में आगे जाने की हिम्मत न थी लेकिन उसने लाशों के पास के एक घर के अन्दर से वही आवाज़ सुनी जिसकी तलाश में वह इधर आयी थी। जो माँ अपनी तीन औलादों को आँखों के सामने मरते देख चुकी हो वह चौथी के लिए जो अब फूटी आँख का दीदा है क्या न कर गुज़रेगी। वह हिम्मत करके चिता के किनारे-किनारे इनसानी हड्डियों को बचाती हुई उस आवाज़ वाले घर तक पहुँच गयी।

उस घर की छतें जल चुकी थीं। केवल दीवार में जुड़ी रह गयी थी और उन्हीं के अन्दर से यह आवाज़ आयी थी। दरवाजे के सामने मलबे का ढेर था। इसलिए अन्दर जाना नामुमकिन था। मोमिना ने मलबे पर से होकर ऊपर चढ़ने की कोशिश की। आशा आगे-आगे चढ़ने की कोशिश की। आशा आगे-आगे चढ़ने लगी। उसका सहारा मिल गया और मोमिना ऊपर पहुँच गयी। वहाँ से उसने नीचे झाँका।

चारदीवारी के अन्दर थोड़ी-सी जगह जिसमें पानी भरा हुआ था और उसमें भैंस का मुर्दा बच्चा फूला हुआ तैर रहा था। उसक बराबर जिन्दा भैंस पड़ी हुई थी जिसकी कमर को एक बड़े शहतीर और बहुत-से मलबे से ऐसा दबा रखा था कि वह हिल भी नहीं सकती थी। वह कराह रही थी और अपने बच्चे को चाट रही थी। भैंस तो वह ममता-भरी माँ होती है जो अपने बच्चे की महीनों की सूखी खाल तक को चाटती है और उसके लिए भी थनों में दूध उबल आता है। भैंस ने मोमिना को जो देखा तो बड़ी फरियाद भरी आवाज़ निकली। वह कह रही थी कि खुदा के लिए मुझे जल्दी इस कैद से रिहाई दो ताकि मैं अपने बच्चे का दूध पिलाऊँ। गरीब छः दिन से भूखा था।

मोमिना हसरत से भैंस को देखती रही कि छः हाथ नीचे दूध की नहर मौजूद है लेकिन बेकार। मेरी-जैसी चार औरतें भी इस बेचारी को आजाद नहीं करा सकतीं हैं। आज मेरे छः दिन के भूखे बच्चे को इसके दूध का एक कतरा भी नहीं मिल सकता। मोमिन टूटे दिल से वहाँ से वापस हुई। दर्जनों खोपड़ियाँ बत्तीसी निकाले उसकी कोशिश पर हँस रही थीं और कह रही थीं—मूर्ख हमने अपने प्यारे-प्यारे बच्चों को बचाने के लिए क्या कुछ नहीं किया। खुशामदें कीं, गिड़गिड़ाये, नाक रगड़ी, लेकिन क्या हासिल हुआ? जाओ, अपने बच्चे को इसी चिता में लाकर रख दो।

मोमिना मस्जिदनुमा शिवाले के सामने से गुजरी तो वह सहसा सज्दे में गिर पड़ी और गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर दुआ माँगने लगी—ऐ सबको पैदा करने वाले, इस दुनिया में जो कुछ मेरे पास था जाता रहा। घर-बार, धन-दौलत, रिश्ते-कुबेदार, शौहर, बच्चे, इज़्ज़त सभी कुछ। अब तूने तक अपाहिज बीमार बच्चा मुझे दिया है, जिसने मेरे वीरान दिल को बागो-बहार बना दिया है। इसके लिए किस जबान से तेरा शुक्र अदा करूँ। मैं इसे मेहनत-मज़दूरी करके पाल लूँगी और जब तक जिऊँगी इसकी आँखों का काम करूँगी और अगर मरते दम भी महरूम न मिल गयी तो उसका हाथ इसके हाथ में देकर कह जाऊँगी कि यह मेरी अमानत है। देख, चाहे तू तकलीफ उठाये लेकिन इसे तकलीफ न हो। ऐ मेरे मालिक तू अब रामू को मुझसे न छीन। अगर मेरी जान के बदले जान बच सकती है तो मैं अपनी जान शौक से कुरबान कर दूँगी, जैसे बाबर ने हुमायूँ पर अपनी जान निछावर कर दी थी।

मोमिना की आँखों से मूसलाधार बारिश होने लगी। उसने उठकर गोद फैलाकर कहा, "ऐ मालिक! तू बच्चे के लिए खाना और दवा दे।"

मोमिना के जिस्म की एक-एक रग, गोश्त का एक-एक रेशा, जज्बात का एक-एक सुर ममता बन गया। वह देर तक यूँ ही दुआ माँगती रही। इससे दिल को ढाढ़स हुई और आत्मविश्वास लौट आया।

मोमिना के आते ही रामू ने पूछा, "माँ, कुछ मिला?"—

मोमिना ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"कुछ नहीं मिला, कहाँ से मिलता, सब-कुछ तो मुसलमान ले गये।"

रामू ने टूटे दिल और मायूसी से दो बार 'हे राम-हे राम' पुकारा।

मोमिना ने खामोशी से रामू का सिर जख्मों को बचाकर अपनी गोद में रख लिया।

"अच्छा माँ पानी ही पिला दे।"

मोमिना ने दिल में बिस्मिल्लाह कहकर अपनी एक छाती रामू के मुँह में दे दी। रामू हैरत से चौंक कर बोला, "माँ!"

"बेटा, तू इसी पर पला है, पी।"

"माँ!"

"कोई बात नहीं बेटा! तेरी जान मुझे बचानी है। पी, शायद कुछ कतरे तेरे नसीब से उतर आएँ।"

मोमिना की ममता ऐसे जोश पर थी कि एक बार सूखने के बाद फिर गंगा दुनिया में उतर आयी और रामू के पेट में चन्द कतरे पहुँच गये।

मोमिना को रामू की कटी-कटी बातों से गाँव के उजड़ने का जो हाल मालूम हुआ वह यह था कि रामू अपने भाइयों, बहनों के साथ खेल रहा था। यकायक बाप चिल्लाता हुआ घर में घुसा कि मुसलमान हमला कर रहे हैं। सब जल्दी से भाग चलो। औरतें चीखने लगीं। दौड़-दौड़कर अपने जेवर और कपड़े बाँधने लगीं। बच्चे रोने लगे और काम में रुकावट डालने लगे। मर्द औरतों को पकड़-पकड़कर खींचने लगे कि सामान की परवाह न करो। जल्दी निकल भागो। रामू की दादी चिल्लाने लगी कि यह कैसे हो सकता है कि अपनी सात पीढ़ियों की कमाई छोड़कर भाग चलूँ दरवाजे तोड़े गये और बहुत-से मुसलमान 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगाते हुए घर में घुस आये।

बड़े दालान की छत को कोई जीना नहीं जाता था किन्तु रामू दीवार से खपरैल पर और उससे छत पर चढ़ जाता था और वहाँ से पतंग उड़ाता था जैसे ही उसके घर में हमलावर घुसने लगे वह जल्दी से छत पर चढ़ गया। खपरैल का जो हिस्सा छत पर टिकने के लिए ऊपर उठा हुआ था उसकी आड़ में छिपकर लेट गया। छत और खपरैल के बीच चौड़ी-सी दराज थी उससे खपरैल के अन्दर का और कुछ बाहर का हाल नज़र आता था। उस जगह से रामू ने देखा कि किस तरह हमलावरों ने औरतों के जेवर और फिर पकड़कर ले गये। घर के मर्दों और बच्चों में से कुछ को मारे जाते हुए रामू ने अपनी आँखों से देखा और कुछ की चीखें सुनीं।

जब हमलावर घर को लूटकर चले गये तो रामू ने सिर उठाकर इधर-उधर देखा। उसके पिछवाड़े कुछ घरों के पार जबरदस्त आग जल रही थी और उधर से हमलावरों के कहकहे और मरने वालों की चीखें सुनाई दे रही थीं। एक छत पर नज़र पड़ी तो देखा कि चार-छः आदमी एक आदमी के चारों हाथ-पाँव पकड़े उसको आग में झोंक दे रहे हैं और वह बेबसी से चीख रहा है। उन्होंने 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाकर उसे आग में झोंक दिया। जब वह शोलों की लपटों में आ रहा था तब रामू ने पहचाना कि वह मेरे पिता जी हैं।

यह देखकर वह बेहोश हो गया।

जब होश आया तो उसने देखा कि चारों ओर से आगे के शोलों में घिरा हुआ है। खपरैल धड़-धड़ जल रही है और छत दो जगह से जलकर नीचे गिर चुकी है। रामू मुँडेर-मुँडेर भागा लेकिन एक

जगह से छत गिरी तो उसके साथ वह भी नीचे आग में जा गिरा लेकिन हिम्मत करके उठा और उठकर अपने कपड़ों को, जिन्होंने आग पकड़ ली थी, फेंक कर भागा। अब उसे याद नहीं किस तरह और किस तरह से वह आगँन में आकर बेहोश हो गया।

जब होश आया तो उसे पता चला कि मेरी दोनों आँखें जा चुकी हैं और सारा बदन फुँका जा रहा है। वह चीखने लगा। कुछ आदमी उसके इर्द-गिर्द खड़े बातें कर रहे थे, "सिसक-सिसककर मरने दो साले को, एक गोली क्यों बेकार करते हो?"

"बहुत ठीक। घर के दरवाजें खुले छोड़ जाएँ ताकि जंगली जानवरों को आने में दिक्कत न हो।" दो-तीन कहकहों की आवाज़ सुनाई दी और कोई ज़रा तेज लहजे में बोला, "लेकिन हमको मालूम कैसे होगा कि यह मर गया है।"

"मैं बता दूँगा। भला यह जी सकता है।"

किसी ने रामू को एक लात मार दी और कहा, "बेटा आराम से मौत का इन्तऽजार करो।"

फिर सब चले गये। उनके जाते ही बारिश होने लगी और रामू आशा के सहारे कमरे में आ गया।

रामू को ये घटनाएँ बहुत कटे-कटे हिस्सों में याद थीं और कुछ बातें एक-दूसरे में गड़मड़ हो गयी थी। जैसे माँ की बेइऽज़्ज़ती के साथ वह अपने छोटे भतीजे का जिक्र जोड़ देता जिसके सिर को एक हमलावर ने ठोकर से चूर-चूर कर दिया था। जब भतीजे का ज़िक्र करता तो करते-करते मोमिना से कहने लगता कि माँ तुमको बहुत दुःख उठाना पड़ा और फिर रो देता।

रामू जब अपने घर की चहल-पहल की या उसकी तबाही की बातें करता तो मोमिना को ऐसा महसूस होने लगता जैसे मैं यह सब-कुछ देख चुकी हूँ। मेरे सामने रामू की माँ मुँह अँधेरे उठकर घर साफ करती और सामने के दालान में चौका लेपती और जब सब बज्जे सोकर उठते तो उनको लस्सी बनाकर देती। फिर दोपहर को सबकी उसी दालान में बैठकर उनके आगे थालियाँ रखकर उनमें दाल और तरकारियाँ परोसती। फिर गर्म-गर्म रोटियाँ देती जाती और लोग खाते जाते। बज्जे अचार के लिए ज़िद करते, बराबर की कोठरी में जाती और हाँड़ी उठा लाती और उसमें से अचार की फाँकें निकाल-निकालकर एक-एक सबको देती। छोटा चन्दर कहता कि मेरी फाँक छोटी है और जब तक वह रामू से ज्यादा न ले लेता न मानता।

रामू ने जब पिछली दीपावली की बातें की, तब भी मोमिना को ऐसा लगा जैसे सब-कुछ उसके सामने हुआ था। रामू की माँ ने दीये जलाकर सबको दिये थे और जब चन्दर अपने मिठाई के सब खिलौने चट कर गया तो फिर रामू का शेर छीनने लगा और उसके लिए जिद करने लगा तो माँ ने रामू

को समझा-बुझाकर उसका शेर चन्दर को दिला दिया था। रामू ने शेर तो दे दिया लेकिन हसरत से उसकी तरफ ताकता रहा।

केवल इतना ही नहीं, आबाद घर का पूरा नक्शा मोमिना की आँखों के सामने फिर जाता, दालान, कमरे और बैठक—सब भरे—पुराने नज़र आने लगते। बच्चे, मर्द और औरतें इधर से उधर आ रहे हैं। रामू की माँ इन्तजाम में लगी हुई है। एक दालान से दूसरे दालान में और उस दालान से कमरे में। कमरे से कोठरी में और फिर रसोई में आ-जा रही है। हर बात का फिक्र है। भैंस दूही गयी। जो दूध आया था वह आग पर क्यों नहीं रखा गया? दही जमा दिया या नहीं? नौकरों को खाना भिजवा दो। चन्दर इतना न शोर करो—रामू कमरे में जाओ और सबक याद करो। बाहर कहार किसी बात के लिए चिल्ला रहा है। अहाते में बैलों को सानी दी जा रही है।

घर की तबाही का हाल मोमिना यूँ देखती कि अहाते की तरफ के फाटक पर हमला होता है। रामू की माँ रामू और चन्दर को लेकर भागने की फिक्र में है कि हमलावर अन्दर घुस आये हैं। रामू बेबसी से 'माँ-माँ पुकारते हैं— मोमिना को शम्स और मेहताब का मारा जाना और लाड़ली का पटक दिया जाना याद आ जाता है।

मोमिना को ऐसा महसूस होता कि रामू की माँ और मैं—चन्दर और रामू, शम्स और मेहताब दोनों घरानों की आबादियाँ और बरबादियाँ एक-सी है। वही ताश के बावन पत्ते, सिर्फ फेंट देने से बाजियाँ बदल गयी हैं। अपने नए अनुभवों पर उसे आश्चर्य होता था कि कहाँ मैं मुसलमान और कहाँ वह हिन्दू? हम दोनों क्यों खिचड़ी के दाल-चावल की तरह मिल गये हैं। कहीं मुझे कुछ हो तो नहीं गया है। लेकिन उसकी वह ममता जिसने रामू को कलेजे से लगा लिया था यकीन दिला देती थी कि नहीं भूली। तू पहले से अच्छी हो गयी है।

अगर कहीं मोमिना अपने इस बदलाव को समझ लेती तो फिर वह यह भी समझ लेती कि वह क्यों एकाएक रामू पर जान छिटकने लगी।

एक जलती हुई घड़ी थी जो कायनात के क्रम और गति के निर्धारण में हाथ बँटाती थी किन्तु नफ़रत की भट्टी ने उसे पिघलाकर मिट्टी में मिला दिया। एक पुर्जा जो बच गया था। गमों से छलनी दिल को लिये खिजाँ के पत्ते की तरह इधर-से-उधर और उधर-से-इधर मारा-मारा फिर रहा है। न कोई ऐसा है जो उससे सम्बन्ध जोड़े और न ऐसा जिससे वह सम्बन्ध तोड़े। न कोई ठौर न ठिकाना। न कोई ओर न छोर। न कोई काम-धाम। उसके लिए आबादियाँ भी ऐसा बंजर मैदान हैं जिसमें घास का एक तिनका तक नहीं। क्या उस पुर्जे के दिल में यह हसरत न होगी कि मैं फिर किसी मशीन में लग जाता।

ऐसी मशीन में जो मुझे समो लेती और मैं खप जाता। क्या यही हसरत अब उसकी कुल जिन्दगी न होगी?

मोमिना एक ऐसा ही पुर्जा थी और वह खिजाँ—मारे पत्ते की तरह मारी-मारी फिर रहती थी। न उससे कोई ऐसा जिससे वह मुहब्बत करे। कोई ऐसा भी न था जो उसका दुःखड़ा ही सुन लेता। ले-देकर एक महरून की याद थी लेकिन वह भी शंकाओं के दर्जनों आवरणों से ढकी हुई थी। पता नहीं महरून जिन्दा भी है या नहीं? और अगर जिन्दा है तो क्या मालूल उससे कभी मिलना होगा या नहीं। भला ऐसी जिन्दगी की नाव खेल सकती है?

रामू का मकान मोमिना के मकान से मिलता-जुलता था। फिर उसे हाल में आयी आशा, अपनी मुहब्बत लेकर। उन दोनों चीजों ने मोमिना की ममता को अपनी ओर खींच लिया और फिर वह अपने आप रामू तक पहुँच गयी। अगर जिन्दगी कहीं इतनी तंग-दामन हो जाती कि मोमिना को एक कुतिया और एक छोकरा तक मुहब्बत के लिए न मिलता तो यह बात असम्भव न थी कि वह भिड़ को बेटी बना लेती। जिन्दगी के फार्मूले हिसाब के फार्मूलों से कम जबरी नहीं।

एक बार रामू अपने घर की तबाही का हाल सुना रहा था और ऐसा डरा हुआ था मानो उस समय भी वह खपरैल की आड़ में कोठे पर छिपा हुआ है और डर रहा है कि कहीं मुझ पर भी कोई हमला न कर दे। मोमिना ने ढाढ़स देने के लिए उसे प्यार किया और समझाया कि जो कुछ हुआ है उसे भूल जाओ। इस ढाढ़स पर वह अपने पिताजी, दादाजी, चन्दर, छोटी बहन और नन्हें भतीजे—एक-एक को याद करके फूट-फूटकर रोने लगा। देर तक रोता रहा। जब कुछ शान्त हुआ तो कुछ सोचकर कहने लगा, "माँ?"

"हाँ रामू!"

सब मुसलमान हमलावर यहीं पाकिस्तान में होंगे?

"पाकिस्तान?"

"हाँ वो लोग कह रहे थे कि अब यह जगह पाकिस्तान में शामिल है।"

"फिर जरूर यहाँ होंगे।"

"माँ!"

"कहो रामू!"

"मैं जब अच्छा हो जाऊँगा तो दो काम करूँगा—एक तो हवाई जहाज उड़ाना सीखूँगा और दूसरे बम बनाना।"

मोमिना इस ख़ौफ़नाक ख़याल को कुछ भाँप गयी। "फिर क्या करोगे बेटा?"

"मैं बहुत-से बम हवाई जहाज पर रखकर उड़ जाऊँगा और जहाँ देखूँगा किसी मस्जिद में बहुत-से मुसलमान जमा हैं उन पर बम गिरा दूँगा और उड़ जाऊँगा। बम गिरेगा धम। किसी का कान उड़ जाएगा, किसी की नाक उड़ जाएगी, किसी का सिर उड़ जाएगा, किसी की तोंद चिथड़े-चिथड़े हो जाएगी, कोई रोएगा, कोई हाय-हाय करेगा—कोई अल्लाह को पुकारेगा।"

रामू इस कल्पना से मस्त हो गया और खिलखिलाकर हँस पड़ा। रामू पर जिन्दगी की कड़वी हकीकत, नफरत, इन्तकाम, कत्ल, मौत, तावारिसी की जिन्दगी यह सब अपने पूरे बोझ के साथ फट पड़ी थी। उसका मासूम बचपन इनके नीचे कुचलकर चूर-चूर हो गया था। वह दूसरों को कष्ट पहुँचाने और कत्ल करने की बातें इस तरह करता जैसे मैच में वह दूसरी टीम को हराने के इरादे बाँध रहा हो। इससे भी ज्यादा दुःखभरी बात यह थी कि उसकी तह में पूरा यकीन था।

मोमिना यह देखकर कि रामू के अन्दर बदले की बारूद भरी हुई है, सहम गयी। फिर प्यार से कहने लगी, "नहीं रामू, ऐसा न कहो। मुसलमानों में बुरे भी होते हैं और भले भी।'

जिस समय रामू बदले की बातें कर रहा था तो उस पर ख़ौफ़ और डर की बजाय हर्ष और विश्वास के जज़्बात आ गये थे लेकिन माँ की जबान से ऐसी बातें सुनते ही बेहद सहम गया और चेहरे पर हवाइयाँ उडऩे लगीं।

"माँ!"

"हाँ, रामू कहो ना!"

"माँ...तुम मुसलमानों की तरफदारी करती हो।"

मोमिना को महसूस हुआ कि अगर मैंने कहीं तरफदारी पर जिद की तो बज्जा मुझे भी गैर समझने लगेगा और फिर मुसीबतों के बोझ और तन्हाई से उसका दिल टूट जाएगा। कुछ मोमिना को यह भी अंदेशा हुआ कि कहीं रामू भाँप न ले कि मैं उसकी माँ नहीं हूँ।

"तुम मुझसे क्यों हट गये रामू!"

"तुम मुसलमानों की तरफदारी जो करती हो।"

"कहाँ तरफदारी करती हूँ।"

"तरफदारी नहीं करती हो?"

"नहीं मेरा मतलब यह था कि उनमें से कुछ अपने को भला भी समझते हैं, लेकिन होते सब ऐसे ही हैं।"

मोमिना ने बात बना दी और रामू को समझाती रही। फिर भी रामू देर तक माँ से अलग-अलग रहा।

रामू के दिल में मुसलमानों से बदला लेने की यही एक सूरत नहीं थी, ऐसी-ऐसी दर्जनों सूरतें थी जिनसे वह मजे लिया करता था। कभी सोचता था कि मैं बहुत-से हिन्दू लड़कों को जमा करके डाकू बन जाऊँगा और मुसलमानों को लूट-लूटकर उनका पैसा हिन्दुओं को दिया करूँगा। वह कभी यह सोचता कि मैं जहर लेकर रातों को मुसलमानों के गाँव में चला जाया करूँगा और कुओं में डाल दिया करूँगा, बस वे पानी पीएँगे और सब-के-सब एक साथ तड़पने लगेंगे। कोई पानी तक देने वाला न होगा।

रामू के मुँह से ऐसी बातें सुनकर मोमिना को उससे नफ़रत हो जाना चाहिए थी लेकिन ममता ने उसे ऐसे आलम में पहुँचा दिया था कि वह ये बातें सुनकर तरस खाती थी कि हाय हमला करने वालों ने मेरे रामू के जिस्म ही को नहीं दिमाग को भी फूँक दिया है। वह रामू को लिपटा लेती और अपने दो-एक आँसू उसके बदले की आग पर छिडक़ देती।

हमलावरों ने अनाज उठाने में बहुत लापरवाही से काम लिया था। इस वजह से घर में बैठक के अलावा जगह-जगह पर चने और गेहूँ बिखरे हुए थे जिनमें अँखुए फूट आये थे। चिडियाँ उनको बारिश की आशा की वजह से खत्म न कर सकी थी। चूहे या तो सब आग में जल गये थे या भाग गये थे। मोमिना ने अनाज को बटोरा तो ढाई सेर के करीब निकला। उस अनाज को मोमिना खुद खाती थी और अपनी छाती का दूध रामू को पिलाती थी।

मोमिना ने अपनी सलवार के दोनों पाँयचे फाडक़र अलग कर लिये। एक को फाडक़र लहँगे या पेटीकोट की तरह खुद पहन लिया और दूसरे को फाड़ कर दो टुकड़े किये और उसका रामू का बिछौना बना दिया। दुपट्टे को दो करके ओढ़ने की दो चादर बना दी ताकि मक्खियाँ उसे तंग न करें। जब उस ओढ़ने-बिछौने का एक जोड़ा रामू के जिस्म से बहने वाले पानी से तर हो जाता था तो मोमिना उसे धोकर सूखने को फैला देती और दूसरा जोड़ा बिछा-उड़ा देती थी। जब रात को ठण्डक होती थी तो सब कुछ रामू को उढ़ा देती थी और खुद भी उसे लिपटा लेती थी।

राम जब भी अपनी माँ का दूध पीता तो पहले से ज्यादा उस पर मोहित हो जाता। उससे बन नहीं पड़ता था कि वह अपनी भावनाओं को जाहिर कैसे करे। बस यह मोमिना के गले में बाँहे डालकर माँ-माँ पुकारता और अपनी खाली आँखों से उसके चहरे पर मुहब्बत और एहसानमंदी की बारिश करता।

मोमिना रामू के इलाज के लिए बहुत बेचैन थी लेकिन इलाज कहाँ से और कैसे सम्भव था। उसको जलने की जो-जो दवाइयाँ मालूम थी उनमें एक भी यहा नहीं मिल सकती थी। ऐसी हालत में बस दो सूरतें थी। एक तो यह कि मोमिना रामू को लेकर पास के गाँव चली जाएँ। शायद कोई भला मानुस तरस खाकर उन दोनों को टिका ले और इलाज कर दे या करवा दे। सो यह सूरत यूँ मुमकिन न

थी कि रामू इतना जला हुआ था कि उसे गोद में उठाना मुश्किल था और मोमिना में इतनी ताकत भी न भी कि उसे लेकर कोस-दो-कोस जा सके। दूसरी सूरत यह थी कि उसी गाँव में बसने के लिए कुछ लोग आ जाएँ और वे तरस खाकर रामू के इलाज का इन्त$जाम कर दें। बस यही उम्मीद थी जिस पर वह जी रही थी किन्तु पहला दिन गुज़रा, दूसरा दिन गुज़रा, तीसरा दिन गुज़रा, चौथा दिन गुज़रा, पर गाँव में बसने के लिए न तो हिन्दू आये और न मुसलमान। वह हैरान थी कि आजकल जबकि लाखों इनसान बेघर होकर मारे-मारे घूम रहे हैं, इस गाँव को जिसके खेत खड़े लहलहा रहे है कोई पूछता तक नही।

हकीकत यह है कि अगस्त और सितम्बर, 47 ई. का ज़माना पंजाब और उसके आसपास के इला$कों के लिए ऐसा हंगामों और उथल-पुथल और अराजकता का जमाना था कि पाकिस्तान के एक गाँव का, जो हिन्दुस्तान की सरहद पर रास्ते से हटकर स्थित था, भाग्यहीन लोगों की बहुतायत के बावजूद खाली रह जाना कोई अजीब बात न थी। सिखों या हिन्दुओं के वहाँ बसने का उस दौर में कोई मतलब ही न था। रहे मुसलमान पनाहगजीं सो वो विशेष रास्तों से गुजरते थे और जो खाली मकान मिल जाता था या जिसे खाली कराया जा सकता था वहाँ बस जाते थे लेकिन कोई ऐसा जरिया न था जिससे उनके दूरदराज के खाली इलाकों की खबर मिल सकें गाँव में आ जाते या अगर आ जाते तो बस भी जाते। बसने के लिए भी तो सौ तरह के इन्तजामों की जरूरत होती है जिनको हासिल करना आसान नहीं होगा। हो सकता है कि कोई व्यवस्था न होने की वजह से न आये हों। हो सकता है कि वह अपनी हिफाजत में या अपने पड़ोसियों को लूटने में ऐसे व्यस्त हों कि उधर ध्यान देने की नौबत ही न आयी हो। हो सकता है कि उनके पास काफी हथियार न हों, इस वजह से वे हिन्दुस्तान की सरहद के करीब बसते हुए डरते हों। हो सकता है कि वे मोमिना के आने से पहले वहाँ आये हों और गाँव को जला हुआ और बसने के नाकाबिल पाकर वे यहाँ की बची-खुची चीजों को लेकर लचे गये हों। खेत जरूर छोड़ने वाली चीज न थे, सो हो सकता है कि उन्होंने उनको आपस में बाँट लिया हो। लेकिन क़ब्ज़ा करने को हंगामों के शुरू होने पर उठा रखा हो।

मोमिना को कोई शख्स उधर से आता-जाता भी नज़र न आया, लेकिन यह भी कोई अजीब बात न थी। उस दौर में सफर करने वाले या तो हिन्दू, सिख और मुसलमान शरणार्थी होते थे या उन दोनों को लूटनेवाले मुजाहिद और सूरमा या उनकी हिफाजत करने वाले फ़ौज़ी। उनके अलावा और कोई शख्स सफर करने की खासकर सरहद के इलाकों में हिम्मत ही नहीं करता था। ऐसी सूरत में एक गाँव जो शाहराहों से दूर सरहद पर बसा था, अगर आने-जाने वालों से खाली रहा तो कोई ताज्जुब की बात नहीं थी।

चार दिन की चाँदनी रातें गुज़र चुकी थी ओर अब अँधेरा पास था जिसे बार-बार आने वाली घटनाएँ और घना, डरावना बना देती थी। जले हुए दालान के सामने जली हुई खपरैल का ढाँचा अन्धकार का पहाड़ बन गया था। घर के हर दरवाजे और हर खिडकी के अन्दर अँधेरा ही अँधेरा था। इतना अँधेरा कि मालूम हाता था कि यह उबलने ही वाला है और उबलकर सारी दुनिया को भर देगा। लाशों को खाने वाले जानवरों की चीख-पुकार अब जो आती थी तो दिल में तरह-तरह के हौल पैदा करती थी। इस अँधेरे में सिर्फ आशा की आँखें थीं जो चमकती थीं और जिससे ज़रा ढाढ़स बँधती थी कि शायद वह आनेवाली नागहानी का मुकाबला कर ले।

मोमिना ने रामू को अपने जिगर का खून जो पिलाया तो उसमें कुछ ताकत तो जरूर आयी लेकिन जब बुखार बढ़ा और जख्म बिगड़ा तो यह ताकत चौगुनी कमजोरी में बदल गयी। दो दिन में वह बहुत चिड़चिड़ा और जिद्दी हो गया। वह नमकीन चीज माँगता था और कहता था कि गाँव में कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई ऐसी चीज जरूर होगी, तुम ढूँढ़ती नहीं हो। उसके पास एक काठ का घोड़ा था जो बैठक में बराबर वाले दालान में रहता था। रामू कहता था कि उसे मुसलमान नहीं ले गये होंगे। उन्होंने कहीं फेंक दिया होगा। उसे ढूँढ़ लाओ। साथ-साथ वह यह भी नहीं चाहता था कि माँ कुछ देर के लिए भी उसके पास से हट जाएँ। जहाँ ज़रा देर के लिए मोमिना उसे छोड़ती वह रोने लगता और फिर उसे अपना बाप चन्दर, दादी, घर, आँखें सब-कुछ याद आ जाता।

मोमिना रामू की तकलीफ़ को समझती थी। जिस बज्जे का आधा जिस्म छाला बन गया हो और हर समय टपकता रहता हो उसकी क्या हालत होनी चाहिए। बहादुर था रामू जो इतना सहन करता था।

आज मोमिना को आये पाँचवीं रात थी कि रामू को घबराहट का दौर पड़ा और वह सब गुजरी हुई बातें याद करके फूट-फूटकर रोने लगा। मोमिना ने मुँह धुलाया, पानी पिलाया, दिल में दुआएँ पढ़-पढ़कर फूँकीं। बहुत देर में जाकर उसकी हालत कुछ सँभली। तब बहलाने को मोमिना ने उसे 'मशीनी घोड़े' की कहानी सुनायी। कहानी सुनकर रामू बोला। 'माँ! अगर मेरा काठ का घोड़ा मिल जाएँ वह उडने लगे तो क्या मजा आये?"

"हाँ बेटा! फिर तुम जहाँ चाहो उडकर पहुँच जाओ।" "माँ, फिर मैं उसपर तुमको बिठाकर मामाजी के यहाँ पहुँच जाऊँ और उनके दरवाजे पर नहीं बल्कि कोठे पर उतरूँ और हम दोनों जीने से उतरकर नीचे आएँ। माँ, फिर मामाजी और नानीजी को कितनी हैरत होगी।'

रामू को इस ख़याल से मजा आ गया और वह हँस पड़ा, लेकिन फिर कुछ सोचकर बोला, "अगर ऐसा घोड़ा होता तो मैं एक काम और करता।"

"वह क्या?"

"वह यह कि उस पर जाकर किसी मुसलमान को उठा लाता और फिर उसके हाथ-पाँव बाँधकर किसी कुएँ में लटका देता और कहता—कहो बज्जा जी, अब मिला मजा, हमें मारने का।"

रामू के मुँह से फिर जहर के भभके निकलने लगे और फिर वह हवाई जहाज और बम वाली बातों के रंग में आ गया। मोमिना अब ऐसे मौके पर हाँ-हाँ कर दिया करती थी लेकिन कुएँ में लटकाने की बात सुनकर उसे अपने शौहर का कुएँ में जिन्दा दफन किया जाना याद आ गया और वह कोशिश के बावजूद भी हाँ में हाँ न मिला सकी।

"कैसा अच्छा होता माँ।" रामू ने कहा।

मोमिना खामोश रही, लेकिन वह डरती भी रही कि कहीं इस खामोशी से रामू भयभीत न हो जाएँ या उस पर फिर से घबराहट का दौरा न पड़ जाएँ, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। रामू किसी गहरी सोच में डूब गया।

पिछले पहर रामू की हालत बिगड़ गयी। मोमिना के पास दवा के नाम को सिर्फ गड्ढे का बरसाती पानी था या दुआ—यूँ तो जब तक रामू की साँस थी तब तक मोमिना की आस थी लेकिन उसकी जबान से निकल गया, "उन तीनों का जैसा कुछ देखा, यह भी देख।"

हालत की खराबी कोई छः-सात घंटे तक रही। मोमिना उसका सिर अपनी गोद में लिये हालत देखती रही, दुआएँ माँगती रही और कुरआन की आयतें पढ़-पढ़कर फूँकती रही।

ज़रा दिन चढ़े रामू ने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और कमजोर आवाज़ से पानी माँगा। मोमिना ने पानी देकर पूछा—"भूखे भी तो होगे?"

"हाँ, माँ!"

मोमिना ने रामू के मुँह में छाती दे दी। उसने मुँह में ले तो ली लेकिन दूध पिया नहीं। वह केवल माँ की गोद का भूखा था। उसने कोशिश करके माँ के गले में बाहें डाल दी और कहा, "माँ, अगर मैं बच जाऊँ तो जानती हो क्या करूँगा?"

"क्या करोगे बेटा? तुम बच जाओगे।"

"माँ मैं जिन्दगी-भर तुम्हारी सेवा करूँगा। अपनी जिन्दगी का एक-एक पल उसी में खर्च करूँगा। मैं पढ़ूँगा।

कुछ भी करूँगा तुम्हारे लिए करूँगा। तुमको हर समय दूध, दही खिलाऊँगा। तुमको अपनी जगह से हिलने न दूँगा। हर काम खुद दौड़-दौडकर करूँगा।"

मोमिना के गालों पर आँसूओं का हार-सा गुँथ गया। उसने अपनी आवाज़ को सँभालकर कहा, "हाँ बेटा, तू बड़ा प्यारा है। तू ऐसा ही करेगा।"

रामू की हालत फिर नाज़ुक हो गयी।

"माँ!"

"बेटा!"

"मुसलमान अपने मुर्दों को दफन कर देते हैं।"

"हाँ, रामू!"

"लाश ज़मीन के अन्दर सड़ती होगी और उसे कीड़े-मकोड़े खाते होंगे। यह भी कितना बुरा तरीका है। हम लोग तो आग में फूँक कर सब-कुछ अपने सामने खत्म कर देते है।"

मोमिना अब तक समझती थी कि लाश का फूँकना बहुत खराब तरीका है और दफन करना बहुत अच्छा तरीका है। यह नई बात सुनकर वह हैरान हो गयी लेकिन उसने सोचा कि इस तरह भी महसूस किया जा सकता है।

फिर रामू की हालत और बिगड़ गयी।

"माँ!"

"हाँ, बेटा!"

"क्या मरने में बहुत तकलीफ़ होती है?"

इस खयाल पर मोमिना की ममता तड़प उठी लेकिन उसकी हिम्मत ने कहा, "मोमिना! अपने बच्चे को आखिरी सफ़र के लिए तैयार करना है।" वह अपना दिल थामकर बोली, "नहीं, रामू तकलीफ सिर्फ उन लोगों को होती है जिनके दिल में बुराई होती है।"

"माँ, क्या मेरे दिल में बुराई है?"

"प्यारे, तेरा मन तो हीरा है।"

"सच?"

"हाँ बेटा!"

"रामू।"

"मगर रामू मरने की बात न करो। तुम तो अच्छे हो जाओगे।"

रामू ने कोई जवाब नहीं दिया।

"माँ!"

"हाँ, बेटा!"

"एक बात पूछूँ?

"ज़रूर" "बता देना।"

"हाँ, ज़रूर बताऊँगी।"

"माँ, क्या तुम मुसलमान हो?"

यह सवाल उम्मीद के बिलकुल ख़िलाफ़ था। मोमिना धक-से रह गयी। क्या रामू ने शुरू से ही पहचान लिया था और अब तक मुझे धोखे में रखा? लेकिन नहीं, अब तक तो वह मुझे माँ ही समझता रहा। उसकी बातों में कोई खोट न था फिर क्या बात है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मरते समय सज्जाई का पहचान लेने की जो एक ताकत-सी पैदा हो जाती है, वह रामू में पैदा हो रही है। रामू खुद ही कहने लगा।

"माँ, कुछ ऐसा लगता है कि मैंने अदबुदाकर बहुत-सी बातों को नहीं समझा था। मैं चाहता था कि तुम मेरी माँ होती इसलिए मैंने समझ लिया कि तुम मेरी माँ हो, लेकिन अब छिलका उतर गया और बात समझ में आने लगी। माँ तुमने जितनी मुहब्बत की है सगी माँ ने भी नहीं की, मुझे ऐसा सुख कभी नहीं मिला था। पिछले जन्म में तुम्हीं मेरी माँ होंगी।"

"हाँ, बेटा मैं मुसलमान हूँ।" मोमिना सच छुपा न सकी।

"माँ मुझसे कुछ न छिपाओ, अब मैं डरूँगा नहीं। तुम्हारा घर कहाँ है और तुम यहाँ कैसे आई?"

"मेरा घर दिल्ली के पास था और सब-कुछ लूट लिया गया। सारे अजीज मार डाले गये और मुझे लोग पकड़ ले गये। फिर मौका पाकर मैं भाग आयी और यहाँ पहुँच गयी।"

"लूटने वाले कौन थे हिन्दू?"

"हाँ, बेटा हिन्दू थे।"

रामू की आवाज़ से मालूम हुआ कि उसके दिल पर सख्त चोट लगी है।

"मेरे भाई बहिन भी हैं?"

"दो भाई, एक छोटी बहिन, मार डाले गये और एक जवान बहिन महरून बाकी है।"

"कहाँ है?"

"पता नहीं।"

"हिन्दू उठा ले गये?"

"हाँ।"

"रामू के दिल पर सख्त चोट लगी और मुँह से आह निकल गयी।"

"माँ, अगर तुम बदला ले सकी तो हिन्दुओं से बदला लोगी?"

"देखता नहीं है मूर्ख, मैं तुझे कितना प्यार करती हूँ।"

रामू की आँखों में आसूँ भर आये। वह कहने लगा, 'क्षमा करो माँ, मुझसे भूल हुई। तुम बदला लेना चाहती तो मुझसे न ले लेती। तुम्हारे दिल में तो दया ही दया है।

रामू कुछ सोचता रहा। फिर कहने लगा, "अगर मैं बच गया तो मैं भी अब बदला न लूँगा। अपनी बहिन महरून को ढूँढ़कर लाऊँगा।"

"बेटा, तू जरूर ऐसा करेगा। तू बड़ा अच्छा है। मेरा रामू तो हीरा है।"

"मेरी एक कामना और पूरी कर दो माँ!"

"क्या?"

"तुम मेरे मरने पर गम न करना और मेरी आत्मा उसी समय शान्त होगी, जब तुम सुखी होगी। माँ, तुम नहीं समझ सकती कि मैं तुमसे कितना प्यार करता हूँ।"

मोमिन ने पत्थर का दिल करके जवाब दिया, "मैं सब करूँगी लेकिन तू अच्छा हो जाएगा।"

"हमारे गाँव में सबसे मज़बूत चीज़ वह पत्थर है जिस पर शिवाला बना है। तुम मुझे वैसी ही की मजबूत मालूम होती हो। माताजी, तुम जो चाहो कर सकती हो। मेरी माँ का नाम प्रेमा है और बाप का नाम सूरज प्रसाद, उन्हें बुरे मुसलमान पकड़ ले गये हैं। हो सके तो उन्हें भी मेरी बहिन के साथ ढूँढ़ना।"

"मैं बेबस औरत हूँ। न पैसा है और न कोई मददगार, लेकिन जो कुछ कर सकती हूँ उन दोनों को छुड़ाने के लिए करूँगी। जो मुहब्बत मैं तुमसे करती हूँ वही प्रेमा से करूँगी। तुम शान्त रहो बेटा!"

"एक बात और है माँ—तुम्हारा जी चाहे तो दफन कर देना। मैं तुम्हारा ही बेटा हूँ। ईश्वर करे, दूसरे जन्म में तुम्हीं से पैदा होऊँ और तुम्हीं मेरा पालन-पोषण करो।"

बुझता हुआ चिराग लम्हे-भर के लिए इस तरह भड़ककर हमेशा के लिए खामोश हो गया। मोमिना वाकई शिवाले का पत्थर बन गयी। वह कुरआन की आयतें पढ़ती रही और जब रामू चला गया तो उसने अपनी सलवार की बनायी की हुई चादर को धोकर उसे कफन दिया। वह अकेली न उस लाश को दफन कर सकती थी और न फूँक सकती थी लेकिन उसे यह भी पसन्द न था कि उसके बज्जे को मरने के बाद जंगली जानवर अपनी खुराक बनाएँ। इसलिए उसने लाश उठाकर बैठक में रख दी और उसकी दीवार पर कोयले से लिख दिया—

"यह लाश रामू की है। वह हिन्दू था लेकिन उसकी माँ मोमिना मुसलमान थी। अगर यहाँ मुसलमान आएँ तो इसे दफन कर दें, हिन्दू आएँ तो फूँक दें। मोमिना अगर जिन्दा बची तो यह एहसान करने वाले का शुक्रिया करने यहाँ एक बार जरूर आएगी।"

मोमिना ने बैठक के सब दरवाजे बन्द कर दिये और दहलीज पर कुछ जंगली फूल लाकर चढ़ा दिये।

उस उजड़े गाँव में मोमिना की एक सहेली और थी और गाँव छोड़ने से पहले वह उसकी भी ख़बरगीरी कर लेना चाहती थी, यानी भैंस।

मोमिना वहाँ गयी। खण्डहर पर चढ़कर उसने झाँका। पानी सूख चुका था और माँ और बछड़े की लाशें एक-सरे से एक गुँथी हुई पड़ी थीं मानो वे दो जिस्म नहीं बल्कि एक ही जिस्म हों।

मोमिना वहाँ से रुख्सत होकर जब गाँव से निकलने लगी तो आशा उसके इरादे को भाँप गयी और खुशामद-भरी निगाहों से मोमिना को देखने लगी। वह यह कह रही थी कि मैं रामू को छोड़कर नहीं जा सकती, मुझे माफ़ करो। मैं तो उसकी समाधि पर जोगन बनकर रहूँगी।

आशा अब पहले वाली आशा न थी। वह निराश हो गयी थी। मोमिना ने उसको चुमकारा और प्यार से समझाया, "भोली-भोली आशा क्या तू समझती है कि रामू वह था जिसे मैं बैठक में छोड़ आयी हूँ? वह तो एक बेकार की चीज थी। असल रामू तो अब मेरे मन में है और कहता कि तुम महरून और पेरमा की खोज में निकलो, जब तक तुम उनकी खोज में लगी रहोगी मैं तुम्हारे मन में रहूँगा और अगर तुमने इस मक्सद को भुलाया तो मैं चला जाऊँगा। चल आशा, तू अगर रामू से प्रेम करती है तो तू भी मेरे साथ आ।"

आशा समझी या नहीं, लेकिन मोमिना के साथ चल पड़ी। गाँव से निकलकर मोमिना शिवाले के सामने आ गयी और वह पत्थर देखने लगी। जिससे रामू ने उसकी उपमा दी थी। वाकई वह एक भारी लम्बी-चौड़ी चट्टान थी जो अपने सीने पर शिवाले या मस्जिद को उठाए हुए थी। जाने कब से उठाए हुए थी और न जाने कब तक उठाए रहेगी। दंगों और आग तथा क़त्लो-ख़ून का उस पर कोई असर नहीं पड़ा था।

मोमिना ने ऊपर नीचे देखा। पाँव-तले वही ज़मीन थी और सिर पर वही आकाश जिसके बीच उसके सुख के दिन बीते थे और दु:ख के भी। उन दोनों के बीच में पहले की तरह हवा के झोंके हिन्दुस्तान से पाकिस्तान और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आते-जाते थे।

पत्थर वहीं रह गया और मोमिना, उसी धरती और उसी आकाश के बीच में अपने मिशन पर चल खड़ी हुई।

(उर्दू से अनुवाद: डॉ. सादिक)